लोकायन

बुलेटिन

इस अंक में –

विशेष आलेख

- सामाजिक कार्यकर्त्ता की समस्यायें–रघुपति
- भोपाल त्रासदी पर चौकसी
- प्रसिद्ध कवि व चिंतक गिरधर राठी द्वारा पुस्तक समीक्षा
- पी.यू.डी.आर. का परिचय
- बाल स्वास्थ्य लोकायन को पुरस्कार
- कृषि विज्ञान व तकनीकी, विषमता निर्मूलन समिति और लोकतांत्रिक धारा पर संवाद
- आरक्षण पर बहस जारी – समाजवादी चिंतक दिनकर साक्रीकर, समाजशास्त्री आन्द्रे बेते व आनन्द चक्रवर्ती और सक्रियकर्मी जनार्दन

खण्ड–3 अंक–4

आरक्षण पर बहस–I

पिछड़ों का 'मैग्नाकार्टा'
मंडल आयोग : पिछड़ों की एकता का पैगाम

दिनकर साक्रीकर

मंडल आयोग की रपट एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है। पिछड़ों के लिए यह रपट मैगनाकार्टा के समकक्ष हो सकती है : ऐसा मेरा मानना है। इस रपट की एक खासियत यह है कि प्रचलित विद्याशाखाओं जैसे समाजशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान, अर्थ शास्त्र, संख्या शास्त्र आदि विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों और टाटा इन्सटीट्यूट ऑफ सोशल रिसर्च जैसी जानीमानी संस्थाओं का सहयोग लेकर अति शास्त्रीय तरीके से तैयार किया गया है। भारत की जनगणना आजकल जातिवाद ढंग से नहीं होती। जिस वर्ष आखिरी बार जनगणना हुई थी उसी वर्ष संख्या शास्त्र के जरिये जनसंख्या का आधार लेकर अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़ों का अनुपात निकाला गया और इस तथ्य को आयोग से सप्रमाण सिद्ध किया। कुल मिलाकर अनुसूचित जाति और जनजाति 32 फीसदी और पिछड़े 42 फीसदी हैं। इसका मतलब अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़ों को जोड़कर भारत में उनकी संख्या 74 फीसदी से अधिक होती है तो पिछड़ों का सवाल बहुसंख्यकों का सवाल है। इस भारत के तीन चौथाई लोग सामाजिक और आर्थिक शोषण और हमलों के सदियों से शिकार बने हुए हैं। जनसंख्या में जिनका अनुपात 20 फीसदी से कम है ऐसे उच्च जाति के लोग नब्बे फीसदी ओहदों पर कब्जा करके बैठे हैं। अल्पसंख्यक उच्च जाति के अन्याय, अत्याचार और शोषण से बहुसंख्यक जनता को मुक्त करवा कर उनके उचित अधिकार और सामाजिक समता के हक को दिलाना भारतीय समाज के स्वास्थ्य की एक अपरिहार्य जरूरत है।

मंडल आयोग के और एक महत्व पर विशेष ध्यान देना चाहिए। सवाल सिर्फ चंद नौकरियों या शिक्षा में सीमित स्थान मिलने का नहीं है। चंद पिछड़ों को नौकरियां मिलेगी,चिकित्सा या इंजीनियरिंग क्षेत्र में चंद स्थान प्राप्त हो जाने मात्र से सवाल हल नहीं होगा। यह भी बिल्कुल सत्य है कि इससे सामाजिक समता का निर्माण भी नहीं होगा। इसीलिए आयोग ने कुछ बुनियादी बातों पर जोर दिया है। आयोग इस बारे में साफ है कि देश में जो भीषण विषमता है उसको खत्म करने का एक ही तरीका है कि उत्पादन साधनों, उघोग और जमीन पर से निजी मिलकियत को खत्म कर उसका सामाजीकरण करना, पिछड़े ज्यादातर ग्रामीण इलाके में रहते हैं। हमारे किसान या खेतिहर मजदूर या छोटे कारीगर सामान्यतया पिछड़ों की हस्ती है। नौकरियों से या शिक्ष से उनका सवाल नहीं हो सकता। उनको जमीन मिलनी चाहिए। सीलिंग से मुक्त होने वाली जो जमीन आजकल सिर्फ अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों को बांटी जाती है उसमें कुछ हिस्सा पिछड़ों को भी मिलना चाहिए। आयोग का सुझाव बहुत महत्व का है। यह करने के लिए कोई नये कानून वगैरह की जरूरत नहीं है। जो जमीन के कायदे अलग–अलग राज्यों में बनाये हुए हैं उन पर ईमानदारी से और सख्ती से अमल किया जाय तो हालात बहुत बदल सकते हैं। यह काम तुरन्त होना चाहिए, ऐसा आयोग का आग्रह है।

मौजूदा उत्पादन सम्बन्धों में सिर्फ इस कार्यवाई से परिवर्तन नहीं हो सकता। जमींदारों और साहूकारों की गुलामी से पिछड़ों को मुक्त कराना आसान काम नहीं। इसके लिए संघर्ष छेड़ना पड़ेगा और छेड़ना चाहिए, इस संघर्ष में पिछड़ों के साथ दलित, आदिवासी, महिलाओं को भी साथ में लेना चाहिए। और एक महत्व की बात आयोग ने सिर्फ हिन्दू पिछड़ों का ही नहीं बल्कि मुसलमान, ईसाई, सिख आदि सभी धर्मो के पिछड़ों पर विचार किया। सर्वधर्मीय पिछड़ों का एक विशाल मंच मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू करवाने के लिए संघर्ष हेतु खड़ा हो सकता है। यही रास्ता पिछड़ों को सशक्त व प्रभावशाली बना सकेगा। पिछड़ों का ऐसा संयुक्त मंच जिसमें दलित, आदिवासी और महिला को साथ लेकर संगठित किया जायेगा, वह एक महान शक्ति निर्माण का स्त्रोत होगा। राजनीति की फिसलन के मौजूदा दौर से पहले समाजवादियों ने इस दिशा में प्रयास किये थे। वे चाहें तो अब भी इस अवसर के उपयोग से परिवर्तन की ताकत खड़ी कर सकते हैं।

गुजरात में दो दंगा चला है या कुछ समय तक मध्य प्रदेश और राजस्थान में हुआ या महाराष्ट्र में जो हवा बह रही है, इस सबसे एक बात साफ होती है कि मंडल आयोग ने जिस आरक्षण की सिफारिश की है उसका अमल न होने देने का निश्चय उच्च जाति के लोगों ने यिका है। इतना ही नहीं, जो आरक्षण अभी मिला हुआ है उसको भी खत्म करने का उनका इरादा है। जाति का आधार क्या ? इस सवाल का उत्तर उच्चवर्णियों के पिछड़ों पर होने वाले हमले उनको गृहनिर्माण मंडल द्वारा दिये हुए पक्के घरों को तोड़ना, उनके घर में यदि तांबा, पीतल या स्टेनलैस के बने बर्तन हों तो वे भी पत्थर से या लाठी से तोड़ना आदि तो सब मन के आदेश का पालन है। वर्ण वर्चस्व की नीति पर अमल करना है। अपने वर्ण स्वार्थ का रक्षण करने के लिए यह सब चल रहे हैं। और उच्चवर्णियों द्वारा नियंत्रित पत्रकार, विचारक और विद्वान व्यक्ति मनुस्मृति के

कानूनों की रक्षा करने के लिए जूझ रहे हैं। आरक्षण के खिलाफ इतना शोर क्यों? और चंद दलित डाक्टर हो जाते हैं या इंजीनियर बनते हैं तो इतनी क्या बला आने वाली है ? क्या समाज पर या देश पर संकट आने वाला था? गुजरात में हमलावरों का नारा था कि दलित डाक्टर माने मरीज का अन्त ? किसी ने अखबार से खोज लेने की कोशिश नहीं की कि गुजरात में 20 हजार डाक्टर हैं उनमें सिर्फ 200 दलित हैं। कितने रोगी सवर्ण डाक्टर की नालायकी और लापरवाही से गुजरे और कितने दलित डाक्टरों की, इसका कोई हिसाब नहीं? दलितों को पैसा कमाने वाला धंधा या व्यवसाय मिलना ही नहीं चाहिए। उन पर हक रहे सिर्फ सवर्णों का, इस नीति को तोड़ना है तो मंडल आयोग का 42 फीसदी आरक्षण वास्तव में मिलना ही चाहिए। सर्वोच्च न्यायलय के पूर्व निर्णयों के कारण कोई विवाद उत्पन्न न हो, इस विचार से आयोग ने जिन को 42 फीसदी आरक्षण मिलना चाहिए, उनको सिर्फ 24 प्र.श. दिया है। गुजरात सरकार ने जो देने का सोचा था वह तो इससे भी कम था। तो फिर लड़ाई क्यों ?

यह लड़ाई सचमुच सत्ता के लिए है। हजारों साल से देश की सम्पूर्ण सत्ता जिन सवर्णों के कब्जे में है उनको सत्ता में किसी दूसरे की भागीदारी नहीं चाहिए। सत्ता पूर्णतः अपने ही कब्ज में रहे इसलिए दलितों, पिछड़ों या आदिवासियों को दबाये रखना जरूरी है, उनको उच्च शिक्षण से और अधिकारों से वंचित रखना भी आवश्यक है। फिर मंडल आयोग के सुझाव तो इस सत्ता को तोड़ने वाले हैं, वह तो उत्पादन के साधनों पर मिलकियत में भी परिवर्तन चाहता है। इतना बुनियापदी परिवर्तन कौन बरदाश्त करेगा। तो खत्म करो मंडल आयोग को और आरक्षण को।

यह उद्देश्य है मंडल आयोग विरोधी फसाद का। इसलिए जरूरी है कि हम पूरी ताकत और संगठित एकता से निश्चयपूर्वक इनका सामना करके अपने समानता के हक को हासिल करें। अगर सर्वधर्म के पिछड़े, दलित, आदिवासी, एक हो जाते हैं तो उनकी ताकत से ही परिवर्तन हो सकेगा। सामाजिक समता का आदर्श प्राप्त करने का कार्यक्रम मंडल आयोग ने दिया है। इसलिए कहता हूं कि वह पिछड़ों का 'मैग्नाकार्टा' है।

(श्री दिनकर साक्रीकर 'पूर्वा' नामक परिवर्तनवादी मराठी मासिक के सम्पादक हैं तथा प्रमुख समाजवादी विचारक हैं। – सं.)

शब्द संख्या : 1,153

आरक्षण पर बहस–II

समता का सवाल और आरक्षण

आन्द्रे बेते

आरक्षण के फायदे और नुकसान पर एक बार फिर विचार करते हुए हमें दो भिन्न परन्तु एक दूसरे से जुड़े हुए प्रश्नों को दिमाग में रखना होगा–एक सत्ता की लड़ाई का व दूसरा सामाजिक न्याय का। आरक्षण के सवाल पर लोग अक्सर राजनैतिक लाभ या राजनैतिक सम्भाव्यता के आधार पर अपना दृष्टिकोण तय करते हैं। 1977 में बिहार में व 1985 में मध्य प्रदेश और गुजरात में अन्य पिछड़ी जातियों को आरक्षण देने की बात के पीछे चुनाव में लाभ प्रमुख कारण था। राजनैतिक कारणों से ही अंग्रेजों ने इस शताब्दी के तीसरे दशक में प्रायद्वीपी भारत में बड़े पैमाने पर आरक्षण की शुरूआत की। परन्तु कम–से–कम सिद्धान्त में तो, राजनैतिक स्वार्थ व सामाजिक न्याय के बीच भेद करना सम्भव होना चाहिए।

आरक्षण को देखने का सही नजरिया, व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में,समता के लक्ष्य की प्राप्ति की ओर एक कदम के रूप में है। अगर हम समता को मूल या बुनियादी मूल्य के तौर पर स्वीकारते हैं, जैसा कि हमें करना चाहिए, तो हम देखेंगे कि उस मूल्य की प्राप्ति की ओर बढ़ने के विभिन्न तरीके हैं, जैसे कि भूमि सुधार, गरीबी–उन्मूलन कार्यक्रम, निरक्षरता–उन्मूलन आदि। सकारात्मक पक्षपात भी असमानता कम करने का एक सम्भव उपाय है। कुछ समाज इस युक्ति का इस्तेमाल करते, क्योंकि सभी में इस प्रकार की समस्याएँ नहीं होतीं जिनके लिए यह उपयुक्त उपाय हो। व्यापकतम अर्थ में यह उन समूहों के लिए विशेष सुविधाएँ जुटाने का तरीका है जिनको अतीत की समाज व्यवस्था ने पंगु बना दिया था और जो आज भी उसके असर को भोग रहे हैं। विशेष अवसर देना समता के विकास के लिए एक खास प्रकार का औजार है, जिसका समयबद्ध प्रयोग होना चाहिए। इसके इस्तेमाल से सहमत होते हुए भी मैं मानता हूं इसका प्रयोग अत्यन्त सावधानी से होना चाहिए क्योंकि इस युक्ति का दुरुप्योग भी बहुत आसानी से किया जा सकता है।

नौकरियों में आरक्षण विशेष समहों के प्रति सदियों के भेदभाव के असर को विशेष अवसर द्वारा समाप्त करने का एक तरीका है और यह अनेक तरीकों में से एक ही तरीका है। सकारात्मक प्क्षपात के अन्य तरीके हो सकते हैं विशेष

समूहों व उनके सदस्यों को खास वरीयता से स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, पीने के पानी आदि की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं। विशेष अवसर देने के उपाय को केवल सरकारी नौकरी में जातिगत केटे के रूप में देखने की वर्तमान प्रवृत्ति को मैं अस्वस्थ मानता हूँ। सकारात्मक पक्षपात के एक तरीके के तौर पर नौकरियों में आरक्षण का केवल विशेष स्थितियों में ही औचित्य है, और वह भी उसके दुरुपयोग पर अंकुश लगाने के पर्याप्त उपायों सहित।

जैसा कि सब जानते ही हैं, हमारे संविधान में 'अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जन–जातियों को अन्य पिछड़ी जातियों' से अलग करके देखा गया है। हमारे वर्तमान और अतीत दोनों के ही सामाजिक ढांचों के संदर्भ में यह फर्क पूर्णतः न्याय संगत है, और मैं मानता हूँ कि इस फर्क को घूमिल करने के परिणाम प्रतिगामी साबित होंगे। अन्य पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी या किसी भी प्रकार की नौकरी में जातिगत कोटों के मैं विरुद्ध हूँ। पर मैं मानता हूं कि अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए आरक्षण अभी कम–से–कम कुछ समय और जारी रहना चाहिए। उनकी बहुत ही विशेष स्थिति है। सदियों से उन्हें सामाजिक जीवन की मुख्यधारा से बाहर रखा गया है, आदिवासियों को भौगोलिक अलगाव/दुराव के कारण व हरिजनों को सामाजिक अलगाववाद के कारण। असाधारण उपायों का प्रयोग उन्हीं के संदर्भ में न्यायसंगत है और केवल उन्हीं के संदर्भ में उसका औचित्य है।

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए भी नौकरियों के आरक्षण को अनिश्चित काल के लिए लागू रखने या आरक्षण को सार्वजनिक जीवन के हर क्षेत्र में लागू करने के पक्ष में मैं नहीं हूं। नौकरी में आरक्षण के चाहे कितने ही फायदे हों, उसकी सामाजिक कीमत भी देनी पड़ती है। मैं इस मत का हूं कि अनुसूचित जातियों व जनजातियों की भी स्थिति सुधारने के लिए केवल नौकरी में आरक्षण का मुद्दा बनाये रखने की बजाय सकारात्मक पक्षपात के अन्य पहलुओं, जैसे कि पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं, शिक्षा के अवसर तथा अन्य कल्याणकारी सुविधाओं को उन्हें विशेष अवसर के आधार पर उपलब्ध कराने पर जोर दिया जाना चाहिए। यह बात इसलिए भी जरूरी है क्योंकि नौकरियों में विशेष अवसर अपने आप में भारतीय समाज के सबसे कमजोर तबकों की स्थिति सुधारने के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं, उसको असमानता कम करने के दूसरे उपायों के साथ जोड़ना होगा।

(मूल अंग्रेजी से रितु प्रिया द्वारा अनुवादित)

कुल शब्द संख्या – 724

आरक्षण पर बहस–III

आरक्षण के मुद्दे पर संघर्ष से पहले

जनार्दन

(श्री जनार्दन संपूर्ण क्रांति आन्दोलन के चिन्तनशील कार्यकर्त्ता हैं। अभी हाल में एक सम्मेलन में उनसे मुलाकात हुई थी। मैंने उन्हें लोकायन का 3/3 अंक दिया एवं इस पर अपनी प्रतिक्रिया लिख भेजने का आग्रह किया था। उन्होंने किसी भी परिवर्तनकारी कार्यक्रम के लिए परिवर्तन के लिए आवश्यक सामाजिक संदर्भ पर बहुत सशक्त ढंग से अपनी बात रखी है। – सं.)

सम्मेलन से आने के बाद तबियत खराब हो गयी। न जाने क्यों सम्मेलन शिविर, गोष्ठी आदि से आने के बाद तबियत खराब हो जाया करती है। मेरी स्थिति उस नेबले वाली हो गयी है, जिसका जिक्र महाभारत में आया है, कि एक ब्राह्मण परिवार के सामूहिक आत्म बलिदान वाली धरती पर नेवले के लोटने से उसके शरीर का अधिकांश भाग सोने का हो गया। अब वह हर यज्ञ में, हर धार्मिक समारोह में शामिल होने लगा, जहाँ उसे शरीर का बाकी हिस्सा सोने का होने की उम्मीद थी। इसी क्रम में वह युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में गया, परन्तु वहाँ भी सोने का शरीर नहीं हो पाया तो वह मुस्कराने लगा।

मुझे इन क्रान्तिकारी यज्ञों (सम्मेलन, शिविर) से लौटने के बाद इसी हादसे से गुजरना होता है। 74 आन्दोलन की धूल में लेट कर जो शरीर चमकाया था, स्वर्ण का बनाया था, आज बाकी हिस्से को स्वर्ण का बनाने के लिए इन क्रान्तिकारी यज्ञों में मारा–मारा फिर रहा हूं। खैर जाने दें इन बातों को यह फैसला आगे होगा कि कौन सा सम्मेलन युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ था या आत्म बलिदानी ब्राह्मण परिवार का बसेरा।

सम्मेलन से आने के बाद मुझे मालूम हुआ कि मेरा पम्पिंग सेट खराब है, उसे खोलने के लिए एक रिंच बनवाना था, उसके लिए मेरे पास छोटी–छोटी दो छड़ें थीं। एक लुहार के पास गया, उसके सामने अपनी समस्या रखी, उसने कहा घबराने की कोई बात नहीं है, मैं वह रिंच बना दूंगा। उसने अंगीठी जलाई, भाफी चलाकर छड़ के दोनों टुकड़ों को लाल गर्म किया, फिर दोनों को सटाकर हथौड़े से पीटने लगा, छड़ें आपस में जुड़ने लगीं, मेरे दिल में गुदगुदी होने लगी। इसी बीच उसका दूसरा साथी आया, उसने मेरा रिंच बना रहे लुहार को आवश्यक

काम से बाहर भेज दिया तथा स्वयं छड़ पर हथौड़ा पिटने लगा। वह काम जल्द निपटाकर पैसा वसूल लेना चाहता था, इसके लिए उसने जोर–जोर से हथैड़ा बजाना शुरू किया। बस क्या था न केवल छड़ टूट गयी, बल्कि छिटक कर उससे दूर बैठे मुझे भी जा लगी और घायल कर दिया।

कहां आशा लगाये था, इन छड़ों को जोड़कर रिंच बनवाने का, फिर खराब पम्पिंगसेट ठीक कराने का, कहां स्वयं मैं घायल हो गया। मैं सोचने लगा, आखिर गलती कहाँ हुई?

मेरी स्थिति, परिवर्तनकारी जमात के लोगों जैसी हो गयी, जिन्होंने आज की व्यवस्था को ठीक करने के लिए, अगला–पिछला के बीच मेल कराने के लिए आरक्षण का सेतु बैठाने का सोचा था, पुरुष–स्त्री में बराबरी का बोध कराने हेतु मुस्लिम कानून में तलाकशुदा मुस्लिम महिला को मुआवजा देने की वकालत की थी, आज सभी कदम नाकाम हो गये हैं, समाज को तोड़ रहे हैं, हमें और आप को घयल कर रहे हैं, व्यवस्था डंके की चोट पर मजबूत हो रही है।

परिवर्तनकारी जमात के एक सदस्य होने के नाते इन समस्याओं का हल आपने निकाला या नहीं मुझे मालूम नहीं, लेकिन मेरी समस्या का हल मुझे एक बुजुर्ग लुहार ने बता दिया, उसने बताया कि दोनों छड़ों को बार–बार लाल गर्म करके जोड़ते हुए पीटना पड़ता है, जैसे ही वह ठंडी होती है उसे गर्म किया जाता है, फिर उसे हथौड़े से पीटा जाता है, यह क्रिया तब तक दोहरायी जाती है जब तक कि वे आपस में जुड़ न जायें।

और मैंने देखा कि इसी सिद्धान्त के आधार पर दोनों छड़ें जुड़ गयीं और मेरा रिंच बन गया।

रात में सोते वत जब आपकी समस्या पर ध्यान आया तो सोचा क्यों न उस बुजुर्ग लुहार वाला फार्मूला आपको भी बता दूं, शायद कोई काम आये।

माना कि आपकी समस्या बड़ी है, आपको एक बड़ी खराब मशीन को ठीक करना है, उसके लिए आपको छोटी–छोटी अनेक छड़ें मिली हुई हैं, किसी को अगड़ा पुकारा जाता है, तो किसी को पिछड़ा, कोई हिन्दू है तो कोई मुसलमान, कोई मर्द है तो कोई औरत, और न जाने कितने नाम हैं इन छड़ों के, इस खराब मशीन को ठीक करने की एक शर्त है। इन छड़ों को जोड़कर एक औजार बनाना।

और इन छड़ों को जोड़ने के लिए शर्त है, हथौड़ा लगाने के पहले इन छड़ों को ला गर्म करना, बिना गर्म किये जोड़ने के प्रयास से चलाया गया हर हथौड़ा (चाहे वह आरक्षण का गुजरात सरकार का फैसला हो या सुप्रीम कोर्ट का तलाक–शुदा मुस्लिम महिला को परवरिश खर्च देने का फैसला) से हम और आप घयल होंगे।

आरक्षण मेरे समझ से अगड़ों द्वारा, अपने पूर्वजों के दुष्कर्मो का प्रायश्चित और उसके लिए चुकाया गया मुआवजा है, वहीं पिछड़ों के लिए इस मुआवजे को पाकर, उसकी कमियों को भूनकर और कंधे से कंधा मिलाकर आगे के संघर्ष में शामिल होने का आमंत्रण है।

आरक्षण परिवर्तनकारी समूह का अन्तिम लक्ष्य नहीं है, आरक्षण अन्तरिम समझौता है, बड़ी लड़ाई की तैयारी हेतु, आरक्षण आपसी खाई को पाटने वाला सेतु है।

आरक्षण ना तो पिछड़ों की जीत है और न अगड़ों की हार बल्कि दोनों की जोड़ने के लिए अगड़ों द्वारा झुक कर पिछड़ों को उठाने के लिए बढ़ाया गया हाथ है।

यदि आरक्षण के हथौड़े से अगड़ों और पिछड़ों को जोड़ना चाहते हैं तो दोनों को उपरोक्त भावनात्मक गर्मी में गर्म करके लाल करना होगा, वर्ना आरक्षण का हथौड़ा दोनों को जोड़ने के बजाय घायल ही करेगा।

यदि मेरे जैसे गंवारू साथी की सलाह समझने में दिक्कत हो तो एक सवाल का जवाब लिख भेजेंगे।

क्या कारण है कि जब आज की अपेक्षा समाज अधिक क्रूर था, समझदारी नहीं थी, फिर भी आरक्षण की नीति को उसके लिए आवश्यक प्रावधान, संविधान में आसानी से ही नहीं बल्कि खुशी–खुशी शामिल किया गया ?

लोहियाजी ने अपनी 'जातिप्रथा' नामक पुस्तक में कहीं कहा है कि सवर्णों को दक्षिण के पिछड़ों की क्रूरता, बदला लेने की स्वाभावना को समाप्त करना है तो अपने बीच से मधुलिमये और राजनारायण पैदा करना होगा।

लेकिन उनकी सलाह अधूरी थी, यदि आज की व्यवस्था पर चोट पहुँचाना चाहते हैं, तो जहाँ सवर्णों के बीच पिछड़ों के हक की वकालत करने वाला पैदा करना होगा, वहीं पिछड़ों में, सवर्णों के बीच से अपने हमदर्द को पहचानने की शक्ति पैदा करनी होगी। सवर्णों को दोस्ती करने की भूख पैदा करनी होगी, इसके लिए पुरानी गलतियों को बार–बार याद करने के बजाय उसे भूलने की प्रवृति आगे बढ़ानी होगी।

इसके बिना लाख अच्छाई के, आरक्षण से न तो समाज जुड़ेगा, और न आज की व्यवस्था पर चोट पहुंचाने वाला औजार बन सकेगा।

और जहाँ तक मुझे मालूम है आपको उस औजार की जरूरत है जिससे आज की व्यवस्था पर चोट पहुँचायी जा सके। इसके लिए मेरी नेक सलाह यही

होगा कि आज की परिस्थिति में आरक्षण आपके काम नहीं आयेगा, आपमें यदि माद्दा है, तो उपर्युक्त परिस्थिति का निर्माण करें फिर आरक्षण की बात करें, तब कोई बात बनेगी।

———————

शब्द संख्या – 1,153

आरक्षण पर बहस–IV

आरक्षण पर बहस : एक छोटा–सा सवाल

आनन्द चक्रवर्ती

पिछड़ापन तय करने के लिए जाति पर्याप्त आधार है या नहीं आरक्षण पर चल रही बहस का यह मुख्य बिंदु है। जाति–आधारित आरक्षण के पक्षधर, श्री डी.एल. शेठ ने अपने लेख में कहा है कि विकास की मुख्य धारा में परम्परागत पिछडी जातियां प्रवेश कर सकें इसके लिए आरक्षण एक ''आवश्यक माध्यम'' है। इनके लिए आरक्षण नहीं होगा तो विकास का सारा लाभ वही ले जाएंगे जो पहले से ही 'जमीन, शिक्षा व सामाजिक प्रतिष्ठा' से सम्पन्न हैं। दूसरी तरफ, जाति–आधारित आरक्षण के सशक्त विरोधी, श्री आई.पी. देसाई (इकनामिक एंड पोलिटिकल वीकली, 19(28), 14 जुलाई, 1984), मानते हैं कि इस प्रकार का संरक्षणात्मक भेद–भाव भारतीय संविधान जिसका उद्देश्य है एक धर्म निरपेक्ष जाति व सम्प्रदाय के असर बगैर समाज की संरचना, की मूल भावना के खिलाफ है। वह पिछड़ेपन की 'सेक्यूलर' कसौटियों––जैसे कि व्यवसाय, शिक्षा व रोजगार के आधार पर आरक्षण का प्रस्ताव करते हैं।

हमारी राय में यह दोनों ही लोग, जो जाति–आधारित आरक्षण के पक्ष या विपक्ष में बोलते हैं, इस साझी समझ पर काम कर रहें हैं कि केन्द्रीय व राज्य सरकारें संविधान के निदेशक सिद्धान्तों के प्रति वास्तव में प्रतिबद्ध है, भारतीय समाज के पिछड़े तबकों चाहे उनकी पहचान किसी भी जाति या आर्थिक वर्ग से हो, के उत्थान के लिए प्रतिबद्ध हैं। इस प्रकार पिछड़ेपन की परिभाषा ही दोनों के लिए प्रमुख मुद्दा है।

हमें लगता है कि दोनों ही असली सवाल को अनदेखा कर रहे हैं। असली सवाल होना चाहिए कि क्या सरकारें, केन्द्र या राज्य दोनों हीं सचमुच भारतीय समाज के आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़े तबकों के कल्याण, खुशहाली व विकास के लिए प्रतिबद्ध हैं। हमारा मत है कि उसकी प्रतिबद्धता सच्ची नहीं, केवल नारे–बाजी है। इसलिए पिछड़ेपन से निपटने के लिए आरक्षण पर ध्यान केन्द्रित रखना केवल भ्रम फैलाने का एक तरीका है। इस बात का आधार भारतीय राज्यतंत्र के मूल चरित्र की समझ में है। राज्यतंत्र, जो कि सरकार से भिन्न है, का अभिप्राय भारतीय समाज के उन तबकों, उच्च वर्णों व आर्थिक वर्गों से है जो सरकार के तीनों अंगों पर निर्णायक प्रभाव डाल सकते हैं। इस प्रभाव के कारण सरकारी तंत्र इन्हीं तबकों के हितों की रक्षा व उनकी प्रगति के लिए काम करता है।

देश के विभिन्न भागों खासकर बिहार, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में गरीब व शोषित तबकों के संगठनों के प्रति पिछले दशक में राज्य सरकारों के व्यवहार ने स्पष्ट कर दिया है कि राज्यतंत्र पर प्रभुत्व रखने वाले लोग यथास्थिति को मजबूत बनाए रखना चाहते हैं। ऊपर दिए गए राज्यों में जाति व वर्ग में सबसे पिछड़े भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के संगठनों पर पुलिस द्वारा क्रूर दमन के अनेक उदाहरण हैं, जबकि यह लोग केवल कानूनी न्यूनतम मजदूरी जैसी बुनियादी मांग कर रहे थे। गरीबों के संगठनों पर पुलिस द्वारा पिछले कुछ वर्षों में किए गए दमन, जिसके तथ्यों के बारे में जानकारी विभिन्न नागरिक अधिकार संगठनों ने संकलित एवं प्रकाशित की है, से स्पष्ट है कि राज्यतंत्र गरीबों को भयभीत करके सदियों से चले आ रहे शोषण को आज भी स्वीकार करने के लिए मजबूर करना चाहता है। अपने उत्थान हेतु पिछड़े तबकों के लिए संगठन की आवश्यकता की ओर संकेत करते हुए भी शेठ और देसाई दोनों ने ही इस मूल तथ्य को अनदेखा कर दिया है।

सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े तबकों के हालात के प्रति वर्तमान भारतीय राज्यतंत्र के रवैये को देखते हुए उन्हें बेहतर बनाने के लिए आरक्षण की सरकारी नीतियों पर आंशा रखना बेमायने लगता है, चाहे आरक्षण के आधार की कोई भी परिभाषा हो।

(मूल अंग्रेजी से रितु प्रिया द्वारा अनुवादित)

शब्द संख्या – 588

संवाद–I

कृषि के लिए उपयुक्त विज्ञान एवं तकनीकी की तलाश

सुरेन्द्र सुमन

राष्ट्रीय किसान मंच द्वारा आयोजित गोष्ठी की रपट

जीवन के सभी क्षेत्रों की तरह कृषि में भी आधुनिक विज्ञान का प्रसार हुआ है, जैसे सिंचाई के लिए बिजली–पम्पसेट; जुताई–दौनी के लिए ट्रैक्टर–थ्रैशर, फसल के रख–रखाव के लिए रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक आदि। इन सब के उपयोग से सम्बन्धित ज्ञान के लिए कृषि–वैज्ञानिक, फिर इस सब की प्राप्ति के लिए बैंकों से ऋण आदि पूरी की पूरी एक संरचना खड़ी करने में 'आधुनिक विकास' की मौजूदा दृष्टि ने येगदान किया है। इस संरचना की विशेषता यह है कि यह बहिरागत है अर्थात् किसान और गाँव के बाहर से आती है तथा अब इसके बिना खेती का काम भी नहीं चलता है। इससे खेती और किसान पराबलम्बी हुए हैं। कृषि के इस प्राविधिक और आर्थिक परावलम्बन पर विचार करने तथा इसके विकल्प में स्वदेशी विज्ञान और तकनीक को दिशा तलाशने के लिए जौनपुर के हिन्दी भवन में 13–14 जून 1985 को एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। आयोजन राष्ट्रीय किसान मंच की ओर से था। इसमें किसान, किसान संगठनों के कार्यकर्ता एवं कुछ कृषि वैज्ञानिक शामिल हुए।

कृष एवं कृषि–विज्ञान

पहले दिन की चर्चा मुख्यतः कृषि विज्ञान की दिशा और कृषि पर पड़ने वाले उसके प्रभाव एवं उससे उत्पन्न समस्याओं के विभिन्न पक्षों पर होती रही। चर्चा की शुरूआत सर्वोदय विचारक आचार्य राम मूर्ति ने यह कहते हुए की कि खेती एक आर्थिक क्रिया मात्र, कच्चे माल के उत्पादन की पद्धति मात्र नहीं है, यह पूरी जीवन पद्धति है। आज खेती आंतरिक उपनिवेशवाद का शिकार है। इसलिए उसके हर पक्ष में परावलम्बन बढ़ता जा रहा है। हमारे अपने ज्ञान और कौशल को समुचित बनाये जाने के लिये उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि परम्परागत तरीकों को समुन्नत करना चाहिये जैसे हल में बाल–बेयरिंग लगाया जा सकता है।

कीटनाशकों के उपयोग पर चर्चा करते हुए श्री भारतेन्दू प्रकाश ने कहा कि आधुनिक तरीकों के उपयोग से हानिकारक कीटों के साथ लाभदायक कीट भी मारे जाते हैं जबकि परम्परागत तरीकों में लाभदायक कीटों को बचा लिया जाता था। उन्होंने बताया कि सूअर–बिष्ठा का उपयोग कीटनाशक के रूप में किया जा सकता है। श्री सुनील सहस्रबुद्धे ने सवाल उठाया कि परम्परागत तरीकों के अच्छा होने के बावजूद किसान इसे क्यों छोड़ रहे हैं? श्री रघुवंशमणि पाण्डेय का कहना था खेती करने आयी आधुनिक शिक्षा प्राप्त पीढ़ी परम्परागत तरीकों को पिछड़ा मानती है। साथ ही ऐसा माना जाने लगा है कि इसे अपनाने से फसल को घाटा होता है। इसीलिए किसान आधुनिक तकनीक अपनाने की दिशा में बढ़े हैं। भारतीय किसान यूनियन हरियाणा के मेजर ईश्वर दयाल त्यागी ने बताया कि कीटनाशक का उपयोग जितने बड़े पैमाने पर उत्तर प्रदेश और बिहार में होता है, उतना हरियाणा में नहीं, फिर भी हमारी फसल अच्छी है। उन्होंने बताया कि हरियाणा में एक गाँव अकबरपुर के एक किसान ने कीटनाशक खाद के भरपूर उपयोग से खूब उत्पादन किया, उसे कृषि पंडित की उपाधि मिली। पर पांच साल में खेत की जमीन खराब हो गई और उस पर उसे ईंट का भट्टा लगाना पड़ा। हरियाणा में जब सरकार ने विमान से कीटनाशक छिड़कना चाहा तो किसानों ने उसका विरोध किया।

दीनदयाल शोध संस्थान गोंड्डा के कृषि वैज्ञानिक श्री वाजपेयी ने विस्तार से बताया कि किस प्रकार गोमूत्र से बीज का सींचन किया जा सकता है। शेतकारी संघटना से जुड़े श्री गिरीश सहस्रबुद्धे ने कहा कि विज्ञान और तकनीक के प्रश्न को हमें इस रूप में लेना चाहिए कि किस प्रकार हम किसान की आर्थिक ताकत को बढ़ा सकें और उसके परावलम्बन को घटा सकें ताकि इस व्यवस्था के विरोध में वह आन्दोलन जारी रख सके।

वैकल्पिक विज्ञान की दिशा

दूसरे दिन की गोष्ठी में श्री रामचन्द्र राही ने कहा कि किसान अपनी युक्ति का मार्ग स्वयं कैसे खोज सके, इसके लिए उसके स्वावलम्बन को पाने में मददगार स्थिति को तलाश करना ही वैकल्पिक विज्ञान एवं तकनीकी की दिशा है। राष्ट्रीय किसान मंच के श्री गिरधर सहाय ने कहा कि खेती के आधुनिक उपकरण और तरीके किसान और मजदूर विरोधी हैं, ऐसा कहना सही नहीं है। उसके अनुसार जापान का अनुभव यह बताता है हाथ से बोये गए बीजों की तुलना में मशीन से बोये गये बीजों की बढ़त अच्छी रही। बिहार में खेतिहर संगठन से जुड़े श्री सुरेन्द्र सुमन ने कहा कि आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकी के प्रतिगामी चरित्र को पहचाने बिना इसके विकल्प की दिशा तय करना कठिन है। आधुनिक विज्ञान के सार्वभौमिक और सार्वजनिक होने का ढोल पीटा जाता है। पर सच में यह पूंजीपतियों के और पश्चिमी संसार के पक्ष में जाता है। किसानों

के और पूर्व–वासियों के शोषण, गुलामी और बर्बादी के लिए यह जिम्मेवार है। इसके कई उदाहरण दिये गए। गाँधी विद्या संस्थान के श्री गौरी शंकर दूबे ने कहा कि जो तकनीक हमें उत्पादन बढ़ाने में सहायता दे, हमें स्वीकार करनी चाहिए। विकास भाई ने कहा कि जब हम किसी तकनीक को अपनाते हैं, तो पूरी व्यवस्था को अपनाते हैं। इसलिए विाान और तकनीक के प्रश्न को अलग से कैसे देखा जा सकता है। श्री सुनील सहस्रबुद्धे ने आधुनिक विज्ञान और तकनीकी में सैद्धान्तिक पक्ष की विवेचना करते हुए बताया कि ताप यांत्रिकी का ऊर्जा–सिद्धान्त किस प्रकार मनुष्य को अप्रतिष्ठित करता है। सत्र के अन्त में चिपको आंदोलन के नेता श्री सुन्दरलाल बहुगुणा ने विज्ञान और तकनीकी के प्रश्न को पर्यावरण से जोड़ते हुए बताया कि प्रदूषण की समस्या को पूरी व्यवस्था के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। आज की व्यवस्था में किस प्रकार पश्चिमी देशों और पूँजीपतियों के लाभ निहित हैं, इस पर विस्तार से प्रकाश डाला। पश्चिमी देशों में लकड़ी के फर्नीचर और कलात्मक चीजें, जिसे वे बड़े गर्व से दिखाते हैं, तीसरी दुनिया के वनों के विनाश पर ही आधारित हैं।

गोष्ठी के अन्त में यह तय किया गया कि वैकल्पिक विज्ञान और तकनीकी के इस प्रश्न पर माहौल बनाने के लिए कुछ कार्यक्रम लिए जायें जैसे––

1. विभिन्न स्थानों और स्तरों पर ऐसी गोष्ठियां करना।
2 परम्परागत खेती–तकनीकी के ज्ञान को लिपिबद्ध करना
3. वैकल्पिक विज्ञान की दिशा में प्रयोग आरम्भ करने के लिए एक केन्द्र निर्मित करना।
4. ऐसे प्रयासों के लिए एक समिति बनाना।

शब्द संख्या – 990

———

पुस्तक समीक्षा

इतिहास–दृष्टि के अन्तर्विरोध

गिरधर राठी

आज की अपेक्षाएँ एक चिन्ताशील ईमानदार भारतीय की छटपटाहट का आईना है। मौजूदा हालात उसे रास नहीं आते। देश जिस दिशा में बढ़ा जा रहा है, उसमें बहुत कुछ अनर्थकारी नजर आता है। वह जानना चाहता है कि हम इन हालात में कैसे पहुँचे। इस सूरत से उबरने का क्या उपाय है? पंकज ने इस पुस्तक में जो विश्लेषण और समाधान पेश किये हैं, वे संश्लिष्ट, भावपूर्ण और विचारपूर्ण है लेकिन उनकी संश्लिष्टता ही यह माँग करती है कि उन्हें बारीकी से देखा–परखा जाय। फौरन उन्हें स्वीकार करना कनि लगेगा, लेकिन एकाएक अस्वीकार करना भी आसान नहीं होगा।

इस पुस्तक के तर्क को समझने का एक उपयोगी सूत्र है वह इतिहास–दृष्टि जो पिछले दस–बाहर वर्षो में नये तथ्यों तथा नये विश्लेषणों के साथ उभरी है। इसमें भारत के इतिहास को दो भागों में देखा जाता है। पहला भाग आदि काल से अंग्रेजों के आगमन से पहले तक। दूसरा ब्रिटिश हुकूमत और उनके चले जाने के बाद भी, आज तक जारी इतिहास।

इतिहास का पहला भाग बहुत कुछ समृद्ध, स्वस्थ, सुखी और सनातन भारत का है। उसमें विकृतियाँ आयी अंग्रेजी प्रभुत्व के साथ। हमारा शक्तिशाली वर्ग चूँकि उनका भक्त हो गया, इसलिए रोग बढ़ता गया। 1947 में आजाद होने पर भी हमने संविधान, राज–काज के ढांचे, रहन–सहन, शिक्षा, भाषा वगैरह सभी प्रमुख क्षेत्रों में अंग्रेजियत वाली धारा को बरकरार रखा।

इस दृष्टि से, इतिहास के उस पहले और लंबे दौर में भारत एक सुखी और संपन्न राष्ट्र था। यहाँ चाहे एक केन्द्रीय सत्ता रही हो, या अनेक राजा रहे हों, पर राष्ट्रीय अस्मिता मुख्यतः सांस्कृतिक तत्वों से तय थी। भारतीय समाज में राजनीति और राज्यतंत्र की धौंस वैसी नहीं थीं जैसी आज है। लोकचित्त, लोकमानस, लोकमर्यादा के नाम से परिचित एक व्यापक सत्ता थी। उसी के अंग थे राजनीति, राज्यतंत्र, धर्मतंत्र और अन्य सभी शक्तियाँ, संस्थाएँ और प्रक्रियाएँ। सामंजस्य और सौहार्द जीवन का मूलमंत्र था। उसी के तहत विभिन्नधर्म, संप्रदाय, वर्ण, जाति, व्यवसाय–समूह वगैरह बराबरी का सम्मान पाते हुए रहते थे। यहाँ तक कि मुसलमान को भी एक अलग पूजा–उपासना वाला संप्रदाय मान कर

व्यापक समाज का अंग बनाया जा चुका था। इस व्यवहार का आधार थी वह अद्वैत–अभेद की दृष्टि, जो तात्त्विक एकता पर जोर देती थी, बाहरी या ऊपरी विभेदों पर नहीं। बल्कि विविधता और विभिन्नता को ईलिए सम्मान तथा सहानुभूति से देखा जाता था।

उस समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था तो थी, लेकिन इससे ऊँच–नीच का भाव नहीं पैदा होता था। मसलन उन्नीसवीं सदी के आरंभ में 600 रियासतों में से 325 ऐसी थीं जिनके राजा आदिवासी और पिछड़ी जातियों के थे। ब्राह्मण केवल 12 और क्षत्रियनुमा जातियों के दो–ढ़ाई सौ राजा भर थे। सेन, पाल, गुप्त, मौर्य इत्यादि असंख्य प्राचीन राज्य सा साम्राज्य विभिन्न जातियों के राजाओं के अधीन थे। इसी तरह कबीर, रैदास, दादू, नानम, नामदेव और असंख्य संत और ऋषि–मुनि भारतीय समाज में पूज्य रहे हैं। इसीलिए द्विजों के प्रभुत्व और दलितों के अपमान की धारणा, या हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य की भावना उस सनातन भारत की नहीं, अंग्रेजों की पैदावार है।

इस तरह, कुछेक फेर बदल और भिन्न रंगों के साथ मोटे तौर पर उक्त एक–सी तस्वीर उभरेगी। इसलिए तफ़सीलों में जाना यहाँ जरूरी नहीं है। दूसरी ओर अंग्रेजों ने आकर भारत की उस विशिष्ट संरचना, दर्शन तथा दृष्टि को छिन्न–भिन्न कर दिया। समाज से सौहार्द–सामंजस्य खत्म करने के लिए तरह–तरह के साम्प्रदायिक और जातीय विभेद उभारे। लॉर्ड कॉर्नवालिस के स्थायी वंदोवस्त को कुछ इतिहासकारों ने खास अहमियत दी है।उसी के बाद से भूमि संबंध, पैदावार के लिए बोये जाने वाले अनाज और खेती की विधियाँ बदलने लगीं। खेतों, वनों और उत्पादन साधनों पर लोगों का हक नहीं रहा। उद्योग–धंधे ऐसे लगने लगे जो अंग्रेजी उद्योगों का पोषण करें। नये वर्गों का उदय होने लगा जो पराश्रित और विदेश–अभिमुख थे। 18 19वीं सदी के इतिहास पर नये तथ्य जुटाने वाले धर्मपाल और क्लाड अल्वारेस, पी.पी.एस.टी. जैसे स्वदेशी विज्ञान की खोज में लगे समूहों के जितेन्द्र बजाज और सुनील सहस्रबुद्धे; राजनीति–राज्यतंत्र और पश्चिमी वैज्ञानिक दृष्टि के एकाधिकार के खिलाफ स्वदेशी धर्म–संस्कृति–विज्ञानों की महत्ता स्थापित करने के लिए व्यग्र आशिष नंदी इत्यादि कुछेक नाम सहज ही ध्यान में आते हैं, जो कमोवेश इसी इतिहास–दृष्टि को अपनाते हैं। सभी समान रूप से नहीं, कमोवेश, अलग–अलग रुझानों के साथ। हाँ, उन सभी का आम लक्ष्य उस औपनिवेशिक, पराधीन मानसिकता से निबटना है जो भारत की दुर्दशा का कारण बनी।

इतिहास के उक्त दूसरे दौर में ही उन्नत इस्पात प्रविधि, ढाके की मलमल जैसी कारीगरी, प्लास्टिक सर्जरी और चेचक के टीके जैसी हिकमतें अंग्रेजों ने जबरन और कानूनन बंद करायीं। भारतीय नृत्य, संगीत, साहित्य, स्थापत्य, शिक्षा इत्यादि का मखौल उड़ाया गया था उनको पहचानते समय विदेशी प्रभावों का जिक्र जरूरी लगा, या उन्हें पश्चिमी कलाओं से हीनतर बताया गया। भारतीय आत्मगौरव को कुचलने की भरपूर कोशिश हुई। खेती की हमारे वातावरण के अनुकूल उन्नत विधियाँ प्रचलित थीं, उन्हें भी नष्ट कराया गया। जो कुछ श्रेष्ठ है वह पश्चिम में, अंग्रेजों के पास है। बाकी सब असभ्य और बर्बर हैं। यह अंग्रेजी साम्राज्यवाद का मूलमंत्र था।

इसमें संदेह नहीं कि अंग्रेजों के आगमन से भारत ने एक नया मोड़ लिया। उसकी अस्मिता को शायद सबसे बड़ी चुनौती मिली। साथ ही साम्राज्यवादी नीतियों और इतिहास रचना ने, इतिहास उन्होंने जिस रूप में गढ़ा और समझाया, उसने, भारत के बारे में बहुत–सी निर्मूल भ्रांतियाँ फैलायीं। लेकिन यह तर्क अपनी जगह फिर भी है कि भारत की जातीय चेतना में शायद बहुत समय से घुन लगा हुआ था। यदि पूरा देश पथभ्रष्ट होता दिखा तो केवल भौतिक कमजोरी के कारण नहीं। उसके कुछ गहरे भावात्मक–मानसिक कारण भी रहे होंगे।

इस इतिहास–दृष्टि की कुछ विशेषताएँ और विचित्रताएँ तुरंत दिखाई देंगी। सबसे महत्वपूर्ण यह कि विकृतियों की शुरूआत अंग्रेजों से मानी जाती है। इससे पहले, बल्कि आजादी के बाद तक, इतिहासकारों का जोर 'मध्ययुग' पर रहता था। मुस्लिम आक्रमण और मुस्लिम राजाओं के जमाने को ही हिन्दू धर्म तथा भारतीय राष्ट्र के विचलन का मुख्य कारण समझा जाता था। बल्कि हमलावरों से हारने की बात ऐसी थी कि उससे पहले के भारतीय समाज में जर्जरता आ चुकी थी, यह माना जाता था।

लेकिन नये इतिहास को सिर्फ तीन–चार सौ वर्ष में, और वह भी पुरातन समाज की शक्तियों और कमजोरियों की छानबीन के वगैर समेट देना कुछ अटपटा लगेगा। उपनिवेशवाद में सब रोगों की जड़ देखने का नया चलन एक तरह से एडवर्ड सईद की पुस्तक आरिएंटलिज्म से चला है। एशिया–अफ्रीका के अनेक देशों ने पिछले एक–डेढ़ दशक में महसूस किया है कि उनकी छवि दरअसल साम्राज्यवादियों ने ज्यादातर जानबूझकर (और कुछ हद तक अपनी समझ की सीमाओं के कारण) बनायी है, अपने स्वार्थ के लिए। अब उन्हें अपनी असली स्वत्व की पहचान करना है।

लेकिन खुद पश्चिम में भी पश्चिमी दृष्टि के एकाधिकार को चुनौती दी जा रही है। विज्ञान, दर्शन, समाजशास्त्र राजनीति, वगैरह सभी क्षेत्रों में। इसके कारणों से हम थोड़ा बहुत परिचित ही हैं। उद्योग–विकास के युटोपिया की सीमाओं का सामने आना, आणविक विनाश का डर, पर्यावरण का क्षय, दैनिक

जीवन से सुखचैन का उठ जाना, ये भी कुछेक कारण हैं। इस तरह पूर्व और पश्चिम दोनों में ही एक नया वैचारिक और भावनात्मक ज्वार उठा है। संभव है कि पश्चिमी प्रभाव में ही पूर्वी अस्मिता का स्वर अधिक उभर रहा हो। पर यह दूसरी बहस है।

हमारे काम की एक बात यह है कि आधुनिक वैज्ञानिकता के खिलाफ सांस्कृतिक–भावात्मक जड़ों वाली सभ्यता–दृष्टि, जिकी मांग इन दिनों बढ़ी है, कोई नायाब चीज नहीं है। अव्वल तो 18वीं सदी में प्रबोधन युग (इनलाइटनमेंट) के तर्कवादी–वस्तुपरक वैज्ञानिक उभार से पहले यही मानवीय दर्शन सब जगह था। दूसरे, प्रबोधन युग में ही प्रबल रूप से विको और हर्डर जैसे चिंतक भावात्मक–सांस्कृतिक, क्षेत्रीय–जातीय, मानव–केन्द्रित दृष्टि के लिए लड़ रहे थे।

दूसरी ओर, हमारे देश में विज्ञान, प्रगति और आधुनिकता का यह संदेश कुछ प्रबुद्ध लोगों को बहुत ही आकर्षक और नया लगा। राजा राममोहन राय से लेकर गाँधी, नेहरू, अम्बेडकर तक और बाद में आज की युवा पीढ़ी तक––दो दृष्टियों के इस द्वंद्व के जो–जो रूप उभरे हैं, उनकी गिनती कराना कठिन मगर दिलचस्प होगा। यह जानना–समझना भी दिलचस्प होगा कि किसी युग में किसी खास दृष्टिकोण का प्रभाव क्यों बढ़ जाता है, जबकि उसका विरोधी दृष्टिकोण भी पूरी तरह खत्म नहीं होता। ऐसा करना केवल बुद्धि–विलास नहीं होगा। हमें अपनी राह खोजने में, संतुलन बनाये रखने में भी मदद मिलेगी, ऐसा लगता है। बहरहाल, इतना तो हम देख ही सकते हैं कि चरम देशी शुद्धतावादी चिंतकों से लेकर विशुद्ध पाश्चात्य अनुकरण के हामी लोगों तक 'शुद्धता' की परिभाषा अस्पष्ट रही है। गांधी और विवेकानंद अधिक 'भारतीय' लगते हैं, पर पश्चिम से उन्होंने कम नहीं लिया। नेहरू और अम्बेडकर अधिक 'पाश्चात्य' लगते हैं, पर भारतीयता के तत्व उनमें कम नहीं थे। समाज, इतिहास और दरअसल मानव–जीवन मात्र में, घनघोर विरोध में भी आंशिक स्वीकार का भाव रहता ही है।

यदि उक्त निष्कर्ष सही है तो केवल अंग्रेजों के आगमन से विकृतियों की शुरूआत मानना संदिग्ध हो जाएगा। साथ ही सनातन भारत की आकर्षक तस्वीर में भी धब्बे नजर आने लगेंगे।

शायद इसी से बचने के लिए, उपनिवेशवाद पर केन्द्रित यह इतिहासदृष्टि अधिक पीछे नहीं जाना चाहती। दिलचस्प बात है कि मार्क्सवादी इतिहासकारों ने ज्यादातर 'मध्ययुग' पर ही अपनी नजरें गाड़ायी है न कि ब्रिटिश युग पर। मार्क्सवादी इतिहासकारों को शायद हिन्दू–मुस्लिम4 टकराव ज्यादा पेचीदा लगा, इसलिए भी उन्होंने 'मिली–जुली' संस्कृति की अवधारणा पर जोर दिया। लेकिन उनके लिए अंग्रेजी राज यों भी 'प्रगति' का वाहक था, भले ही उसकी पूंजीवादी राजनीति उन्हें नापसंद हो। उधर 'कट्टर' हिन्दू इतिहास–दृष्टि भी मुसलमानों के खिलाफ और कमोबेश अंग्रेजों के पक्ष में दिखेगी। कभी–कभी अंग्रेज उन्हें 'उद्धारक' भी लगा, बाबजूद उसकी विधर्मिता के। दरअसल यह पूरा दौर विचित्र विरोधाभासों से भरा हुआ है। कट्टर हिन्दू को परंपरागत सांस्कृतिक राष्ट्र के स्थान पर कठोर राजनीतिक 'नेशन स्टेट' वरदान जैसा लगा। हिन्दूवाद का यह रास्वसंघ–गोडसे वाला रूप घोर आधुनिकवादी था–ऐसा निष्कर्ष आशिष नंदी का है। दूसरी ओर दलित, मुसलमान, अन्य अल्पसंख्यक, कट्टर सनातनी वगैरह कई अलग–अलग कारणों से (और कुछ समान कारणों से भी) अंग्रेजी राज में अच्छाइयाँ देखते रहे। निर्बलता और नासमझी ही एकमात्र कारण नहीं रहे होंगे – अंग्रेजों के पराक्रम और विज्ञान का जादू भी सिर चढ़कर बोला होगा। सामाजिक कुरीतियाँ, ऊँच–नीच वगैरह कई बातें रही होंगी, जिससे विद्रोह करके लोगों ने अंग्रेजों का साथ दिया।

उपनिवेशवाद–केन्द्रित इतिहासदृष्टि इन बारीकियों से कन्नी काटती है। लेकिन इसका एक बहुत अच्छा कारण दिया जा सकता है – विभेद और विग्रह की बजाय एकता–समता–सामंजस्य पर आधारित समाज बनाने का हौसला उनमें है। इसलिए जरूरी है कि इतिहास, जो स्मृति बनकर भविष्य की रचना करेगा, इसी आदर्श रूप में सामने आये।

इतिहास के प्रति पंकज तथा अन्य विद्वानों की इस दृष्टि की सबसे बड़ी विशेषता शायद यही है। यथ तथ्यता का इतिहास में यों भी बहुत महत्व नहीं होता। लेकिन यथार्थपरक इतिहास कई अप्रिय तथ्यों को देखने से भी हिचकता नहीं है। दूसरी ओर यह आदर्शोन्मुख इतिहासदृष्टि इससे कतराती है। इसलिए नहीं कि इसकी नीयत खराब है। बल्कि इसलिए कि इसके इरादे नेक हैं। एक ओर वह हिन्दू–मुस्लिम–विभेद की खाई पाटना चाहती है। दूसरी ओर ऊंच–नीच, छुआछूत, स्त्री–अशिक्षा, अन्याय और शोषण की कई यादों को भुलाना चाहती है। इसीलिए एक समरस, आदर्श, सुखी भारत की सनातन कल्पना। ताकि भारत भविष्य में भी ऐसा हो।

सर सैयद और इकबाल जैसे मुस्लिम धार्मिक आधुनिकतावादियों के बारे में कही गयी एक बात यहाँ उल्लेख्य है। उन्होंने एक तो धर्म को समाज–परिवर्तन का बड़ा औजार माना; दूसरे उसके सच्चे रूप की तलाश उन्होंने मध्ययुगीन इस्लाम में नहीं, आरंभिक इस्लाम में की। प्रस्तुत इतिहास–दृष्टि पर कुछ हद तक यह बात लागू होती है। लेकिन इसे आधुनिकतावादी दृष्टि कहा जाय या केवल परिवर्तनवादी–इस पर मतभेद हो सकता है। सच्चे सनातन रूप की तलाश एक

सारतत्व की तलाश है–इतिहास की यथा–तथ्यता पर वह ज्यादा निर्भर नहीं होती। गांधीजी ने भी क्या ऐसा हीं नहीं किया था? पंकज वस्तुतः गांधी के रास्ते की ही अपनी व्याख्या दे रहे हैं। इस प्रसंग में उठी शंकाएं इसलिए अधिक व्यापक हो जाती हैं।

जो लोग निरे सिद्धान्तवादी और बातूनी विश्लेषक नहीं हैं, बल्कि समाज का उचित रूपांतरण चाहते हैं, उन्हें मूलतः उक्त लक्ष्य पर कोई एतराज नहीं होगा। लेकिन एतराज दूसरे कारणों से होगा, जिन्हें हम आगे देखेंगे।

फिलहाल पंकज की दृष्टि के कुछ खास सकारात्मक बिन्दुओं पर ध्यान दें। पंकज राष्ट्र की सांस्कृतिक कल्पना के हामी हैं, केन्द्रीकृत कठोर राष्ट्रीय राज्य के नहीं। राष्ट्रवाद और मातृभूमि प्रेम में वह फर्क करते हैं–राष्ट्रवाद संकीर्ण, त्याज्य है। दूसरे वह युवाशक्ति की अहमियत मानते हैं–शंकराचार्य, ध्रुव, चंद्रगुप्त, गार्गी से लेकर आज तक युवजनों ने ही बड़ी–बड़ी चीजें हासिल की है। इतिहास, पुराण सभी से वे उदाहरण देते हैं। नयी युवा पीढ़ी ने जो आधुनिक हुनर सीखे हैं, उसे भी वह बहुमूल्य मानते हैं। साथ ही यह भी मानते हैं कि 'जो भी बहुत जरूरी' हो, वह बाहर से भी लें। मगर मूल आधार और स्वरूप स्वराष्ट्रीय हो। पराधीनता के अनुभव से गुजरी पीढ़ी का युग अब समाप्त है, नये युग की शुरूआत की संभावना है–वह जोर देकर कहते हैं।

युवा पीढ़ी का अभिनंदन और आह्वान तथाशक्तिशाली वगै की आलोचना और आह्वान–समाज रचना के लिए ये दो मुख्य बिन्दु हैं उनके। यहीं हम इसे भी रेखांकित करें कि उलझनों और नैतिक पतन के झंझावात से उबरने के लिए जो एक नैतिक आक्रोश अहौर नैतिक संकल्प आवश्यक है– पंकज उसी नैतिक वृत्त में सारा विवेचन कर रहे हैं। अपने आप में यह पर्याप्त है या नहीं, यह बहस का नुकता है।

लेकिन जैसे कि ऊपर संकेत किया गया, उनकी इतिहास–दृष्टि की नेकनीयती मानने के बावजूद गहरी शंकाएं उठेंगी। अतीत और भविष्य का आदर्शीकरण कठिन नहीं है, लेकिन वर्तमान पग–पग पर मुंह चिढ़ाता है। अगर वर्तमान समय में समाज छिन्न–भिन्न और निराशामय है, तो आदर्श अतीत भी शंकास्पद हो जाता है। जो मिथक, पुरा–कथाएं या इतिहास समता, एकता, सद्भाव के विस्तार के लिए रचा जा रहा है, उसी के बरवस दूसरे मिथक भी याद आने लगते हैं। एक तरह के मिथक को सत्य और दूसरे मिथक को मिथ्या बताना ठीक नहीं होगा। वे समान शक्ति के प्रभाव डालेंगे। या फिर उसमें से किसी का असर नहीं होगा, क्योंकि विद्रूप यथार्थ उनसे टकरा रहा है। इसी तरह आदिवासी या पिछड़ों के राजा हो जाने मात्र से अछूतों, शूद्रों या पिछड़ों का सार्वजनिक सामाजिक उत्कर्ष हुआ हो, इसका कोई खास प्रमाण इतिहास में नहीं है। प्रमाण है तो बस इतना कि जाति कोई अचल–अटल ठप्पा नहीं थी–धन, शक्ति और प्रभुत्व बढ़ान पर कोई भी क्षत्रिय या अन्य ऊंची जातियों वाली हैसियत पा सकता था। लेकिन उसके तमाम जाति–भाई उसी ऊंची हैसियत में अपने आप नहीं पहुंच जाते थे। उसी तरह जैसे आज अछूतों के नेता ऊँचे तबकों में पहुँच कर उच्च वर्ग के अंग बन जाते हैं–बाकी अछूत जहाँ के तहाँ रहे आते हैं।

एक आदर्श कल्पना के समर्थन में अतीत का आदर्शीकरण कुछ लोगों का निहित स्वार्थों का पोषक भी जान पड़ेगा। कम से कम उनका उपयोग यथा–स्थितिवादी लोग कर ही सकते हैं। तात्विक एकता के नाम पर घोर विषमता और शोषण की व्यवस्था का, वर्णाश्रम धर्म तक का समर्थन करने वाले आज भी मिल जाएंगे। दूसरी ओर, व्यापपक भारतीय स्वत्व की पहचान के विराट् अभियान में यह डर भी है ही कि दलित–शोषित अपने जिस स्वत्व की, अपने जायज हकों की पहचान करने लगे हैं, उसे फिर धूमिल करने की चेष्टा हो।

पंकज वर्णाश्रम व्यवस्था में से भी चूंकि समता और एकता के मूल्य खोज कर निकाल रहे हैं, इसलिए यह ध्यान रखना उचित होगा कि वे शंकराचार्यों (आधुनिक) जैसे परंपरावाद की वकालत नहीं कर रहे। दरअसल दकियानूसों को भी पंकज रास नहीं आएंगे।

एक गम्भीर मनुष्य की अवधारणा को लेकर उठेगी। युवाशक्ति के आह्वान में यह बात भी कही गई है कि कुछ करोड़ युवजन सन्यासी बन जाएं। सन्यास आश्रम को समाजसेवा के लिए पुनः प्रतिष्ठित किया जाय। मनुष्य में अन्तर्निहित श्रेष्ठ तत्वों का आह्वान जरूरी और सही है – पर उसे अस्वाभाविकता की हद तक ले जाना? परंपरा में भी धर्म, अर्थ, काम जैसे पुरुषार्थ हैं। ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ जैसे आश्रम हैं। मनुष्य को कोरा बुराई का पुतला नहीं मानना अच्छी बात है। पर केवल सद्गुणों की खदान मानना, और केवल उद्बोधन के आधार पर किसी काम में लगा देना–बल्कि संसार–त्याग के पथ पर ला देना? प्रभुत्वशाली वर्गों और युवा वर्ग को अभिप्रेरित करने के लिए भावात्मक उद्बोधन काफी नहीं है। इसके अलावा, चीन जैसेदेशों के अनुभव से भी सबक मिलता है, भले ही उनके प्रयोग गांधीवादी न हों, पर उन्होंने भी महान सांस्कृतिक क्रांति के नाम पर नया मनुष्य रचने की बहुतेरी कोशिश की थी। यह भी न भूलें कि अस्वाभाविक ब्रह्मचर्य और सन्यास के प्रयोग ईसाई मठों और अनेक भारतीय संप्रदायों में हुए हैं–और ज्यादातर परिणाम अनैतिकता, कुंठा, पाखंड आदि रहे हैं 'स्वार्थ, राज्यभय, सर्वनाश या पाप–बोध जैसे भावों की बजाय आदर्श से प्रेरित कर्त्तव्य–बोध की

अवधारणा निश्चय ही सुन्दर है, लेकिन कुल मिलाकर यह भी मनुष्य के बारे में सरलीकृत धारणा है।

इतिहास चक्र को आगे बढ़ाने के लिए भावात्मक उद्‌बोधन जरूरी है, पर उस उद्‌बोधन को भी कुछ अधिक ठोस आधारों की जरूरत होगी।

साथ ही अन्य कई व्यावहारिक प्रश्न हैं। हजारों वर्ष की उथल–पुथल, आक्रमणों, राज्य–साम्राज्य–धर्मों के उत्थान पतन के दौरान क्या सनातन भारत नहीं बदला? इतिहास के अनुभवों का लोकमानस पर क्या और कितना असर हुआ? आज के संसार में भारत अलग कट कर किस तरह रह सकेगा? कुछ अन्य लोग जापान को परंपरा और आधुनिकता का अनूठा समन्वय बताते हैं। गहरी पड़ताल की जाय तो शायद पता लगेगा कि जापान न तो परंपरा वाला परंपरावादी है, न ही पश्चिम वाला आधुनिकतावादी। वह न तो पहला रह सकता है, न ही दूसरा हो सकता है।

पर इस इतिहास–दृष्टि की उस विशेषता की ओर हम दुबारा ध्यान खींचना चाहेंगे जो शुरू में इंगित हुई है। वह है–बहस के दायरे को बढ़ाना, उसे अधिक बहुमुखी और तत्वपूर्ण बनाना। यह बहस राज्य बनाम संस्कृति के द्वैध या अधूरेपन से भी उबारती है, और कोरी राजनीति पर केन्द्रित बहस से भी। संस्कृति, भाषा, धर्मतंत्र, लोकाचार जैसे गहरे मानवीय संवलों की याद दिलाकर, राजनीति के लिए सीमित सत्ता की माँग करने वाली दृष्टि सहज ही सम्मान योग्य है। अगर समाज को बदलना है, तो उसे सब तरफ से बदलना होगा। हम जो शंकाएं उठा रहे हैं, वे इसलिए नहीं कि कुर्सी पर बैठे–बैठे ही हर चीज का फैसला हो जाय, फिर क्षेत्र में उतरा जाय। कर्म और चिंतन साथ–साथ चलेंगे तभी कुछ परिवर्तन होगा। चिंतन के बिना कर्म अपंग है। कर्म के बिना चिंतन पाखंड हो जा सकता है। हम यह भी नहीं कहते कि अंतर्विरोधों से सर्वथा मुक्त कोई ढांचा या साँचा हो सकता है। अंतर्विरोध भी जीवन के ही अंग हैं। लेकिन उनको सब कुछ मानना एक दूसरे पाखंड या सिनिसिज्म की ओर ले जा सकता है। हम यह भी नहीं मानते कि सारे आदर्श और परिकल्पनाएं बंकार हैं। बल्कि वे जरूरी है।

लिहाजा हम घुम–फिर कर उसी समस्या पर आ गये हैं जिसका निदान करने निकले थे। क्या करें? आज की अपेक्षाएं क्या हैं? शुरूआत हीं न हीं करनी पड़ेगी–अगर थोड़ा भी परिवर्तन हम चाहते हैं। शुरूआत तरह–तरह के दलों, समूहों या व्यक्तियों ने तरह–तरह से कर रखी है, यह भी हम देख रहे हैं। पर उसका कोई सामूहिक या प्रबल असर नहीं दीखता। जंगलों, गाँवों, शहरों और नगरों में नजर दौड़ाएं तो यही दिखेगा कि हर जगह 'नये–पुराने' सभी लोग परिवर्तन चाहते हैं। कभी–कभी यह लगता है कि वे उसी दिशा में परिवर्तन चाहते हैं जिसकी शुरूआत अंग्रेज कर गये थे। उस दिशा के घनघोर नतीजे (पर्यावरण, भोपाल, नर्मदा घाटी) देखने के बावजूद अब वापस मुड़ना, या अलग दिशा में चलना उन्हें कठिन दीख रहा है। व्यवस्था और प्रचार का योगदान तो इसमें है ही, पर यह न होता तब भी क्या दिशा बहुत भिन्न होती?

पश्चिमी रीति–नीति की घोर आलोचना के बावजूद, जैसा कि हम ऊपर देख आते हैं, 'जितना बहुत जरूरी हो' उतनी आधुनिकता का समर्थन आज सभी करते हैं। तब क्या यह एक उचित मिश्रण की तलाश मात्र है? गांधी और नेहरू ने अलग–अलग मिश्रण तैयार किये थे। आज जो गांधी के पक्षधर हैं, नेहरू के नहीं। मगर जब हम देखते हैं कि नेहरू (आजाद भारत के नेता के रूप में) और अम्बेडकर (संविधान निर्माता के रूप में) गांधी के ही चुने हुए थे–तब किंकर्त्तव्यविमूढ़ता एक नये शिखर पर जा पहुंची है। नेहरू और अम्बेडकर ने गांधी जैसी पुरजोर और पुरअसर आवाज के रहते हुए एक अलग रास्ता चुना, यह बात बार–बार विचार के लिए बाध्य करती है। क्या यह इतिहास–दृष्टि इतिहास की धारा को बिल्कुल दूसरी दिशा में मोड़ सकती है ? और, प्रिय हो तब भी क्या ऐसा परिवर्तन संभव है ?

पंकज : आज की अपेक्षाएं, गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

शब्द संख्या – 3,320

———

समूह परिचय

पीपुल्ज यूनियन फॉर डेमोक्रैटिक राईटस्
(पी.यू.डी.आर.)

पृष्ठभूमि – स्वतंत्र भारत में आपातकाल के अनुभव के बाद नागरिक अधिकार आन्दोलन की अपनी एक स्वायत्त पहचान बन गई है। पी.यू.डी.आर. नागरिक एवं लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्षरत व्यापक प्रवाह का एक अंश मात्र है। जनवरी, 1977 में, पी.यू.सी.एल. एण्ड डी.आर. (नागरिक स्वतंत्रता व जनतांत्रिक अधिकार संघ) दिल्ली इकाई के रूप में आज की पी.यू.डी.आर. का जन्म हुआ था। आपातकाल के दौरान, अक्तूबर 1976 में स्वर्गीय श्री जय प्रकाश नारायण ने पी.यू.सी.एल.डी.आर. की राष्ट्रीय समिति गठित की। कुछ बुद्धिजीवी व

आपातकाल का विरोध कर रहे लगभग सभी प्रमुख राजनैतिक दलों के प्रतिनिधि इसके पदाधिकारी थे।

आपात्तस्थिति की समाप्ति के बाद पी.यू.सी.एल.एण्ड डी.आर. की राष्ट्रीय समिति के अधिकांश सदस्य एवं प्रदेश ईकाइयां निष्क्रिय हो गई। नवम्बर'80 में पी.यू.सी.एल. का राष्ट्रीय स्तर पर पुनर्गठन हुआ। पी.यू.सी.एल.डी.आर. की दिल्ली इकाई ने हालांकि राष्ट्रीय स्तर पर नागरिक अधिकार संगठन के पुनर्गठन का स्वागत किया लेकिन खुद को इसमें विलीन करने की बजाय स्वतंत्र पहचान कायम रखने का निर्णय किया। एक फरवरी 1981 को इसका नाम पी.यू.डी.आर. कर दिया गया। पी.यू.डी.आर. के पी.यू.सी.एल. सहित सभी नागरिक अधिकार संगठनों से दोस्ताना रिश्ते हैं।

अभी हाल ही आयोजित चौथे वार्षिक सम्मेलन में कुमार विकल की एक कविता के माध्यम से पी.यू.डी.आर. की आत्म–छवि प्रस्तुत की गई।

''हमें लड़ना नहीं
किसी प्रतीक के लिए
किसी नाम के लिए
किसी बड़े प्रोग्राम के लिए
हमें लड़नी है एक छोटी सी लड़ाई
छोटे लोगों के लिए
छोटी बातों के लिए''

परिप्रेक्ष्य – हमारे जैसी समाज व्यवस्था में–जहां अध्किांश जनता जीवित रहने की बुनियादी आवश्यकताओं के अभाव में जी रही है। वास्तव में मानवीय गरिमा से जीने के लिए लगभग सभी अधिकारों से वंचित है, खासकर सामाजिक व आर्थिक अधिकारों से समता–स्वतंत्रता एवं नागरिक अधिकारी की ऊंची बातें, लोगों के संघर्ष को अनदेखा करते हुए, केवल खोखली बातें ही रहने वाली हैं। इसलिए मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए ही नहीं बल्कि उनके विस्तारण व लागू करने के लिए भी लड़ाई करने की आवश्यकता है। इससे जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं के वंचन के इस संदर्भ में जीवित रहने का संघर्ष भी बुनियादी अधिकारों के लिए संघर्ष बन जाता है। यह संघर्ष अक्सर सामाजिक द्वन्द्व की ओर ले जाता है और इसके फलस्वरूप दमन होता है। नागरिक अधिकार संगठनों के लिए अनिवार्य हो जाता है कि यह सामाजिक द्वन्द्व के लक्षणों से आगे जाकर उसकी मूल जड़ों तक पहुंचे। इसलिए द्वन्द्व, संघर्ष और दमन के विभिन्न आयामों को समझना, इस द्वन्द्व के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक आधार को पहचानना और फिर नागरिक एवं जनतांत्रिक अधिकारों म्बन्धी मुद्दों को उजागर करना आवश्यक है।, चाहे किसी भी दल या विचारधारा के लोग संकट में हों।

उपरोक्त विश्लेषण से साफ है कि जनाधिकारों के संघर्ष का सवाल कई सांस्कृतिक चेतना के संघर्ष से बहुत गहरे से जुड़ा है। हम लोग प्रयासरत हैं कि लोग धर्म, जाति, सम्प्रदाय और क्षेत्रीय आधार पर खड़े होने वाले द्वंद्वों के वास्तविक कारणों को पहचाने और नयी इंसानी संस्कृति के मूल संघर्षों से अपनी दृष्टि ओझल न होने दें।

इस प्रकार हम अपने संविधान के नीति निर्देशक तत्वों को लागू करवाने के लिए आधारभूमि तैयार करने की कोशिशों में अपना योगदान करेंगे।

संगठन– पी.यू.डी.आर. की मान्यता है कि नागरिक अधिकार संगठनों को राजनैतिक दलों के भाग्य से बन्धना नहीं चाहिए। सांगठनिक ढांचे में आन्तरिक लोकतांत्रिक कार्य प्रणाली पर वह जोर देता है। संगठन का विकास उसके कार्यों द्वारा सदस्यों की राय के अनुसार व चुनाव की प्रक्रिया द्वारा होना चाहिए।

अभी पी.यू.डी.आर. के संगठन में वकील, पत्रकार, छात्र, अध्यापक एवं अन्य पेशों के लोग शामिल है। पी.यू.डी.आर. अपने काम के लिए किसी सरकार, दल या विदेशी एजेन्सी से मदद नहीं लेती। आजकल इसका वार्षिक खर्च 20,0 रुपये के लगभग है। इसका लगभग 40% पुस्तिकाओं की बिक्री से, 40% सदस्यों द्वारा दिये गये आर्थिक सहयोग एवं सदस्यता शुल्क से एवं बाकी अन्य नागरिकों से इकट्ठे किये गये कोष से प्राप्त होता है। आम नागरिकों से इकट्ठा करने में सार्वजनिक सभाएँ एक महत्वपूर्ण तरीका है। संगठन के बारे में लोकतांत्रिक दृष्टि की वजह से ही पी.यू.डी.आर. एक खुली सदस्यता पर आधारित संगठन है। यह किसी राजनैतिक दल या समूह से किसी भी प्रकार से नहीं जुड़ा है और न ही उन पर अपने किसी काम के लिए आश्रित है। लेकिन साथ ही जनाधिकारों के लिए संघर्ष में अपनी सीमित भूमिका में न तो इसकी किसी भी दल से प्रतिस्पर्द्धा है और न ही विरोध के लिए विरोध।

गतिविधियाँ– पी.यू.डी.आर. ने नागरिक व जनतांत्रिक अधिकारों के अनेक मसलों पर काम किया और विभिन्न तरीकों से उन्हें उजागर किया। प्रेस वक्तव्यों, तथ्यान्वेषण/तथ्यों को एकत्र करने वाले दलों की रपटों, सभाओं, हस्ताक्षर अभियानों आदि द्वारा अपनी बात वह अधिकांशतः केवल शिक्षित माध्यम–वर्ग के कुछ हिस्से तक ही पहुँचा पाया है, कुछ जगहों में वह जनतांत्रिक संघर्षों में लगे

लोगों तक पहुंचने में भी सफल हुआ है। उनके लिए सर्वोच्च न्यायालय में कानून की लड़ाई लड़ कर भी उन्हें सहयोग दिया है।

रपटें– 1980 से अब तक लगभग 40 रपटें तैयार की जा चुकी है। उनमें से कुछ पैम्फलेट के रूप में हैं, अधिकांश पुस्तिकाएं हैं। कुछ का भारतीय भाषओं में अनुवाद भी किया गया है। बड़ी संख्या में लोगों को इन मुद्दों से अवगत कराने के अलावा यह रपटें पी.यू.डी.आर. के दृष्टिकोण व भूमिका को समझने में मदद करती हैं।

दो प्रकार की रपटें हैं : व्यापक स्वरूप वाली है जैसे कि 'अनडिक्लेयर्ड सिविल वॉर–अ क्रिटिक ऑफ फॉरेस्ट पौसी इन इण्डिया'' (अघोषित गृह युद्ध– भारतीय वन नीति की एक समीक्षा) और 'एनोनिमस स्ट्रगल–डेमोक्रेटिक राइटिज ऑफ अन–ऑरगनाईज्ड अधिकार)। अन्य पुस्तिकाएँ तथ्यों को एकत्र करने वाले दलों की रपटों पर आधारित है।

अब तक इस प्रकार की 32 रपटें तैयार की गई हैं। इन रपटों में राज्य की मशीनरी द्वारा लोगों को लोकतांत्रिक अधिकारों के हनन सम्बन्धी तथ्य जुटाये जाते हैं। इन रपटों को जुटाते समय जो दल सत्ता में थे उसका विवरण इस प्रकार है जनता पार्टी (5), वामपंथी मोर्चा (1), तेलगुदेशम (1) और अन्य कांग्रेस (ई)। जिन लोगों के नागरिक अधिकारों का हनन हुआ है उनका बहुधा, किसी भी राजनैतिक नेतृत्व से सम्बन्ध नहीं होता (15)। शेष में से (5) स्वतंत्र किस्म के स्थानीय संगठनों, (1) भाजपा, (1) हिंद मजदूर सभा (9) नक्सलवादी एवं उससे जुड़े जन–संगठनों से तथा (1) सीटू से जुड़े थे। सामाजिक दृष्टि से (6) रपटें खेतिहर मजदूर, (4) आदिवासियों, (7) औद्योगिक मजदूरों, (2) स्लम निवासियों, (3) अल्पसंख्यकों, (1) कलाकारों, (2) भिखारियों, (1) राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं, (1) हरिजनों तथा शेष (5) समाज के अन्य सामान्य हितों से सम्बन्धित हैं। इन रपटों के तथ्यान्वेषी दलों में 20 शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े लोग, 15 पत्रकार, 5 वकील एवं डाक्टर शामिल थे। इन रपटों में पी.यू.डी.आर. केवल दमन की घटना के तथ्यों से संतुष्ट नहीं रही बल्कि उनके मूल सामाजिक कारणों को भी खोजने की कोशिश की है, जैसे कि 'ऐन्ड क्वायट फ्लोज द गंगा–अ डॉक्यूमेंटरी रिपोर्ट ऑन पोलिटिकल किलिंग्ज इन रूरल बिहार' (और गंगा शान्ति से बहती है : बिहार में राजनैतिक हत्याओं की एक दस्तावेजी रपट)।

कानूनी मोर्चा – पिछले आठ वर्ष में 100 से अधिक मामलों में नागरिक एवं लोकतांत्रिक अधिकारों की लड़ाई की कानूनी मोर्चे पर लड़ा गया। एशियाड 82 के इमारत निर्माण मजदूरों सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण फैसला हुआ जिसमें पी.यू.डी. आर. ने तीसरे पक्ष की अधिकारिता प्रमाणित की, यानि अन्य व्यक्ति या संगठन उन शोषित लोगों की तरफ से याचिका दायर कर सकते हैं, जिनकी अपने बूते पर न्यायालयों तक पहुंचने की क्षमता न के बराबर है। इस मुकदमें से कुछ संवैधानिक अधिकारों के प्रभाव–क्षेत्र का विस्तार भी हुआ है, इसके कारण बाल श्रम कानूनों में भी कुछ बदलाव हुआ है। और, कुछ हद तक, अन्य श्रम कानूनों का लागू होना निश्चित हुआ है। इनके अलावा, बंधुआ मजदूरों, प्रवासी मजदूरों, फैसले का इन्तजार कर रहे कैदियों/अभियुक्तों, आदिवासियों, गन्दी बस्तियों में रहने वालों तथा अन्य अनेक मुद्दों से सम्बन्धित मुकदमें लिये गए हैं। कई में उसके पक्ष में फैसले या आदेश दिये जा चुके हैं। इन सबके बावजूद वर्तमान सामाजिक–राजनैतिक संदर्भ में कानूनी कार्यवाही की सीमाओं को पी.यू.डी.आर. जानती–समझती है।

सम्मेलन– अगस्त'77 में राजनैतिक बंदियों की रिहाई के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया था। उसके बाद के वर्षों में पी.यू.डी.आर. ने चार सम्मेलन आयोजित किए हैं। पहला था 'विज्ञान, संस्कृति और जनतांत्रिक अधिकार', और दूसरा 'कानूनी व्यवस्था, न्यायपालिक और जनतांत्रिक अधिकार', तीसरा 'खानें, मशीनीकरण और लोग।' चौथा 'जन संगठन एवं जनाधिकार संघर्ष' इन सम्मेलनों ने जनतांत्रिक अधिकारों सम्बन्धी किसी एक मुद्दे पर विचारों के विकसित होने में मदद की है और जीवन्त मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित किया है। इनके द्वारा जनतांत्रिक अधिकारों के बारे में जागरूक एवं विभिन्न तबको को एक जगह पर लाया गया।

संयुक्त कार्यक्रम – अलग–अलग क्षेत्रों में आज अनेक संगठन काम कर रहे हैं। प्रत्येक संगठनों की अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है और इनकी दृष्टि अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं से प्रभावित है। इस संदर्भ में साथ मिलकर कुछ संयुक्त काम करना ही आन्दोलन को मजबूत करने की दिशा में आपसी समन्वय का तरीका हो सकता है। तथ्यों को एकत्र करने वाले दलों तथा अन्य कामों में पी.यू.डी.आर. ने पी.यू.सी.एल. की विभिन्न प्रान्तीय ईकाइयों, सी.पी.डी.आर. (बम्बई व नागपुर) ए.पी. डी.आर. (कलकत्ता) और ए.पी.सी.एल.सी. (आन्ध्र प्रदेश) आदि के साथ समय–समय पर संयुक्त कार्यक्रम हाथ में लिये हैं।

पी.यू.डी.आर. एक सीमित साधनों वाला, छोटा संगठन है। फिर भी उसने सक्रिय साथियों की जमात विकसित कर ली है। सीमित साधनों के बावजूद,

अपने जन्म से ही वह कोई न कोई मुद्दे उठाती रही है, चाहे कोई भी राजनैतिक दल सत्ता में रहा हो। पर निरन्तर बढ़ते हुए दमन के खिलाफ कोई भी प्रयास अपर्याप्त है। इसलिए पी.यू.डी.आर. सभी जागरूक व लोकतांत्रिक तत्वों से भारत में आज चल रहे नागरिक अधिकारों के संघर्ष को समर्थन व सहयोग देने का अनुरोध करता है। सत्ता और व्यवस्था का रूप जनवादी बनाने के लिए की जाने वाली हर कोशिश को निहित स्वार्थी तत्व तोड़–मरोड़ कर पेश करेंगे। ऐसे मौकों पर जनता का साहस एवं विवके ही हमारी शक्ति होगी।

(उपरोक्त परिचय श्री गोविन्द मुखौटी के आलेख, डा. सुदेश वैद्य से चर्चा एवं 21 सितम्बर 85 की आयोजित चतुर्थ सम्मेलन के अवसरपर प्रसारित दस्तावेजों के आधार पर तैयार किया गया है – सं.)

शब्द संख्या –1,627

———

संवाद–II

विषमता निर्मूलन समिति : समता के लिए संघर्ष के दस वर्ष

जगदीश खैरलिया

स्वातंव्य कसलं, नाय बा दिसलं,
विषमलेच्या पोटान, दडून बसलं,
अन्यायाचं साम्राज्य पसरलं,
चला करू परिवर्तन,

यह पंक्तियां है दलित कार्यकर्त्ता––कवि शंकर शिंदे की।

3, 4, 5 मई 1985 को पूना (महाराष्ट्र) के शिवाजी मराठा हाई–स्कूल में आयोजित 'विषमता निर्मूलन समिति' के दसवें राज्यस्तरीय वार्षिक शिविर में उपस्थित करीब 6 0 परिवर्तनवादी कार्यकर्त्ताओं ने शंकर शिंदे के उपरोक्त निनाद का पुनः उच्चारण किया।

1970 के बाद के 4–5 वर्षों में देशभर में सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से युवक आंदोलनों में काफी वृद्धि हुई। गुजरात का नवनिर्माण आंदोलन, बिहार का भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन इसके जीवंत उदाहरण हैं। समाजवादी जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में इस आंदोलन का विस्तार हुआ।

इसी समय महाराष्ट्र में डॉ. बाबा आढाव तथा उनके सहकर्मियों द्वारा चलाया गया 'एकगांव पर पाणवठा' (एक गांव एक कुआं) आंदोलन काफी फैल रहा था। इसके माध्यम से महाराष्ट्र में बिखरे हुए अनेक कार्यकर्त्ताओं के एक सूत्र में बांधने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। उसके परिणाम स्वरूप ही 1976 में परिवर्तनवादी कार्यकर्त्ताओं का प्रथम राज्यव्यापी शिविर हुआ व गं.बा. सरदार, व.द. देशपांडे, रा.प. नेने, डॉ. बाबा आढाव आदि महानुभावों के प्रयासों से 'विषमता निर्मूलन समिति' की स्थापना हुई।

समता–वादियों का एक मंच – 1976 से आज तक सिमति ने नियमित रूप से कार्यकर्त्ताओं के वार्षिक शिविर आयोजित किये हैं। महाराष्ट्र भर के सभी समतावादी और संसद के बाहर काम करने वाले लोकतांत्रिक संगठनों को एक स्थायी खुला मंच मिला। अभी तक पूना, लातूर, नागपुर, बम्बई, कोल्हापुर, बारामती आदि जगहों पर शिविर हुए हैं। दलित युवक आद्याडी, छात्र युवा संघर्ष वाहिनी, युक्रांत, समता आंदोलन, भूमिसेना, राष्ट्र सेवा दल, मुस्लिम सत्यशोधक संगठन, गरीब डोंगरी संगठन, महात्मा ज्योति फुले समता प्रतिष्ठान आदि परिवर्तनवादी संगठनों के कार्यकर्त्ता इस शिविर में साल भर में एक बार इकट्ठा होते हैं, वर्ष भर में किए हुए काम के अनुभवों पर चर्चा करते हैं तथा आगामी वर्ष भर में प्रमुख चुनौतियों का मुकाबला करने हेतु उपयुक्त वैचारिक दृष्टिकोण, मुख्य मुद्दों, कार्यक्रमों और कार्यपद्धति के बारे में नई दृष्टि से लैस होकर जाते हैं।

शुरूआत के कार्यक्रम 'एक गांव एक पाणरठा' पर ही शिविर नहीं रुका बल्कि मराठवाड़ा विद्यापीठ के नामांतर की लड़ाई, मंडल आयोग, राष्ट्रीय एकात्मकता मुहिम, अंधविश्वास के विरुद्ध जनजागरण आदि अनेक महत्वपूर्ण सवालों पर समिति ने काफी आस्था से चर्चा की है व समय–समय आवश्यकतानुसार उपयुक्त कार्यक्रमों के द्वारा सक्रिय भूमिका भी निभायी है।

इस वर्ष पूना में दसवां राज्यव्यापी शिविर हुआ। समिति द्वारा किये दस वर्ष के काम की चित्र–प्रदर्शनी शिविर स्थल पर लगाई गई थी। 'समता आंदोलन' ने भी अपने कार्यों पर चित्र–प्रदर्शनी प्रस्तुत की तथा इसी संघटना ने 'महागाईमेसन्ड व ग्राहकांचे प्रश्न' (मंहगाई–मिलावट व ग्राहकों की समस्याएं) विषय पर चित्र–प्रदर्शनी लगायी। साथ में अन्न–धान्यों की मिलावट के तरीकों से बचने के लिए कुछ नमूने भी रखे गए। आरोग्य दक्षता मंडल ने आरोग्य प्रदर्शनी लगायी। इन विभिन्न प्रदर्शनियों को तैयार करने में अनिल अवचट, संजय पवार, शिवाजी परून्डेकर, सुहास कोते आदि कार्यकर्त्ताओं ने विशेष श्रम किया।

शिविर में रात को गीत व पथनाटक पेश किये गये। सावित्री वाई फुले का चरित्र व दहेज प्रथा पर पथनाटक उल्लेखनीय था। इसके अलावा शिविर स्थान पर पुरोगामी–साहित्य बिक्री की व्यवस्था भी थी।

पिछले चार–पांच साल से अहमदाबाद के अच्युत याज्ञिक, निपाणी के प्रो. सुभाष जोशी नियमित रूप से शिविर में उपस्थित रहते हैं। इस वर्ष इनके अलावा बड़ौदा के सुभाष पालेकर, दिल्ली के विजय प्रताप व राणा कौशल, बिहार के प्रभात, कर्नाटक के बरेड समाज के भीमराव गस्ती इत्यादि अनेक प्रान्तों के कार्यकर्त्ता भी शिविर में पूरे समय उपस्थित थे।

मान्यवर व्यक्तियों का मार्गदर्शन – शिविर में सहभागी हुए 65 संघटनाओं के करीब 600 प्रतिनिधियों ने अनेक चर्चा सत्रों में भाग लिया। समाजवादी विचारवंत माननीय एस.एम. जोशी, नानासाहेब गोरे, समिति के संस्थापक व विचारवंत ग.बा. सरदार, मार्क्सवादी विदुषी कां. गोदावरी परुलेकर, साक्षी विनायकराव कुलकर्णी, मराठी साहित्य सम्मेलन के शंकर पाटील, पूना विद्यापीठ के प्रो. कुलगुरू, डा. सत्यरंजन साठे, लातूर के प्राचार्य जनार्दन वाघमारे बोहरा, समाज के सुधारक असगर अली इंजीनियर, सामाजिक कार्य प्रेरक बाबा आढाव जैसे बुजुर्गों के साथ ही भाई बैद्य, नाहेर भाई पूनावाल, प्रो. नलिनी पंडित, महमद खडल, सच्यदभाई, लक्ष्मण माने, प्रो. अरूण कांबले, प्रो. राव साहेब कसवे आदि महानुभावों ने भी शिविर चर्चाओं में योगदान किया।

उद्घाटन सत्र में आरक्षण नीति का समर्थन करते हुए डॉ. सत्यरंजन साठे ने कहा, 'दुर्बलों को सबलों की बराबरी में लाने के लिए विशेष अवसर के तौर पर आरक्षण लागू किया गया है। जब तक समाज में जाति के आधार पर विषमता है तब तक आरक्षण भी अपरिहार्य है।' गुजरात आंदोलन के गवाह समतावादी पत्रकार अच्युत याज्ञनिक ने अपने डेढ़ घंटे के विवेचन में आंदोलन का आंखों देखा हाल बताया। उन्होंने कहा, 'आरक्षण विरोधी आंदोलन को भड़काने में, उग्र बनाने में गुजरात के वर्तमान पत्र जवाबदेह हैं। आरक्षण–विरोधी इस आंदोलन का व्यापक जनाधार न होते हुए भी झूठी अफवाहें फैलायी गई हैं। आंदोलन को उग्र बनाने वालों पर पुलिस कार्यवाही कर रही थी, इसलिए पुलिस पर भी हमले हुए। इस आंदोलन के पीछे राजनैतिक दांवपेच बड़े पैमाने पर चले। गुजरात में महाराष्ट्र जैसी संगठित पुरोगामी (प्रगतिशील) वैचारिक प्रक्रिया न होने से आंदोलन का स्वरूप इतना उग्र हो गया।

प्रो. अरूण कांबन्डे ने कहा, 'नामांतर सत्याग्रह के समय की एकता से प्रेरणा लेते हुए हमें आरक्षण के समर्थन में एकता स्थापित करने की आवश्यकता है। इस प्रश्न पर व्यापक जन–जागरण की जरूरत है।

संसदवाहच संघटन (गैरसंसदीय संगठन) – गैरसंसदीय संगठनों की भूमिका, कार्य व इन संगठनों के समक्ष उपस्थित चुनौती' – इस विषय पर भी सविस्तार चर्चा हुई। कार्यकर्त्ताओं की संख्या कैसे बढ़ेगी ? दलित समूहों में से कार्यकर्त्ता कैसे निर्माण होंगे? कार्यकर्त्ता को आवश्यक आर्थिक सहारा कैसे दिया जा सकेगा? आदि प्रश्नों पर डॉ. व.द. देशपांडे ने बातचीत का प्रारम्भ किया। शरद कुलकर्णी ने कहा, 'जुल्मी बन–विधेयक लोकविरोध द्वारा ही रुक सका। समता की चाह न रखने वाले राजकीय पक्षों (राजनैतिक दलों) को देखते हुए गैरसंसदीय संगठन ही परिवर्तन की आधारशिला है।

समता आंदोलन के संजीव साने ने सामाजिक प्रक्रिया के अंतर्गत चुनौतियों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा, 'एक गांव पाणवठा से नामान्तर तक परिवर्तन की प्रक्रिया चली है परन्तु आज भी अनेक संगठन सिर्फ कागज पर ही क्यों है? विदेशी पैसा और नक्सलवादियों के कारण ही अनेक संगठनों में फूट पड़ी है। आज गैरसंसदीय काम करना बहुत कठिन हो गया है। लोगों के लिए लोगों द्वारा चलने वाले संगठनों द्वारा अपने काम व पैसे का हिसाब लोगों के सामने रखना आवश्यक है।'' भूमिसेना के रामाराउ वाडू ने कहा, 'वैचारिक दृढ़ता रखकर काम किया जाये तो पैसे भी जमा हो सकते हैं। पैसों की अपेक्षा काम करने में विचार व नीति महत्वपूर्ण है। विदेशी पैसा न लेकर भी भूमिसेना आज आदिवासी क्षेत्र में दृढ़ता से कार्यरत है।' हमाल पंचायत के मारुती गाडे ने कहा, 'राजकरण (राजनीति) से हमें क्या मिला है? इससे वास्तविक सामाजिक प्रश्न उलझ जाते हैं। राजनीतिक पक्ष में न रहने से सामाजिक काम करने का अवसर ज्यादा प्राप्त होता है। जिस संगठन की नींव मजबूत है उसे परदेशी पैसे की कुछ भी जरूरत नहीं है।'

चर्चा का समापन करते समय डॉ. बाबा आढाव ने कहा, 'हम गैर–चुनावी राजनीति करते हैं अतः हम राजकरण का कुछ नहीं समझते ऐसा भ्रम कोई न रखे। राजकरण का अभ्यास करके (राजनीति को समझकर) अपनी भूमिका लोगों के समक्ष रखेंगे। क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए समाजवादी पथ आवश्यक है। परन्तु आज का राजकरण वाले सत्ता हथियाने के लिए वोटों का समीकरण खोजते हैं व जातिवादी शक्तियों में दोस्ती की जाती है। इस राजकरण से परिवर्तन का मार्ग अवरुद्ध हो गया है।'

संकल्प से लड़ी – शिविर में 'स्त्री मुक्ति के प्रश्न', 'अंधश्रद्धा व लोकविज्ञान', 'जातिवादी शक्तियों से मुकाबला करते समय आये हुए अनुभव' – इन विषयों पर भी चर्चा हुई। शैला सातपुते, डॉ. नरेन्द्र दामोदकर, महमद खडस, प्रो. मालचन्द्र भुणगेकर आदि महानुभावों ने चर्चा में भाग लिया। शिविर का समापन करते समय

अखिल भारतीय मराठी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष, स्वातंत्रय सैनिक शंकर पाटील ने कहा, 'राजकारण से बाहर रहकर सतत काम करते समय हमें अपने उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए। विरोध काफी होगा तो भी विषमता के विरुद्ध धैर्य के साथ लड़ो। जातिभेद निर्मूलन के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहो।'

2.5 **लाख रुपयों का संकल्प** – विषमता निर्मूलन समिति के दस वर्ष पूरे हो चुके हैं। परन्तु समता मिली क्या ? नहीं ! परन्तु विषमता मिटाने के प्रयत्न अवश्य बढ़े हैं। देवदासी, कष्टकारी महिलाएं, भटके विमुक्त, दलित, मुस्लिम, सफाई कामगार, भूमिहीन, आदिवासी ऐसे अनेक शोषित घटकों को न्याय दिलाने के हेतु शिविर में चर्चा हुई। कुछ कार्यक्रम तय किए गए व संगठनों ने उसके अनुसार काम किया है। इसके अलावा समाजवादी, मार्क्सवादी, अम्बेदकरवादी, फुलेवादी, समतावादी ऐवे विभिन्न वैचारिक क्षेत्र में काम करने वाले कार्यकर्त्ता व संगठनों को इकट्ठा करने, उनमें संवाद स्थापित करने और समय आने पर कुछ प्रश्नों पर इकट्ठा खड़ा रहने का उत्साह इन शिविरों से बना है।

परिवर्तन की प्रक्रिया में काम कर रहे कार्यकर्त्ताओं की आर्थिक कठिनाइयों का कुछ हद तक निराकरण करने हेतु 25 लाख रुपयों की राशि जमा करने का संकल्प भी शिविर में किया गया।

समता का काम स्वराज्य (स्वतंत्रता) से भी अधिक महत्वपूर्ण व साहस का है। एकता से लड़ें तो यह लड़ाई कठिन नहीं है।वोटों के राजकरण से दूर रहकर समता के आंदोलन के लिए जनशक्ति का समर्थन खड़ा करने का काम सतत शुरू रखने का निश्चय व उसके लिए शक्ति इन शिविरों से मिलती है।

साने गुरू जी का सपना एक दिन जरूर सच होगा––

'एकजुटीची मशाल होऊन पेटवतील हे रान
आता उठवू सारे रान आता पेटवी सारे रान'

(इस रपट के लेखक 'समता आंदोलन' के कार्यकर्ता हैं, जिसका परिचय आप लोकायन के अंक 3 खंड 2 में पढ़ चुके हैं। 'समता आंदोलन' विषमता निर्मूलन समिति से जुड़ा प्रमुख युवजन संगठनों में से एक है। सं.)

शब्द संख्या – 1,556

———

युवाओं का भारत जोड़ो अभियान

24 दिसम्बर 1985 को कन्याकुमारी से कश्मीर तक के लिए प्रस्थान

पू. साने गुरू जी द्वारा संस्थापित आन्तर भारती संस्था भारत के नवनिर्माण, विकास में सबकी सम्मिलित करने तथा स्वतंत्रता के मंत्र के जयघोष हेतु कन्याकुमारी से कश्मीर तक युवाओं की एक साइकिल यात्रा आयोजित करेगी। साईकिल यात्रा का मार्ग दर्शन समाज सेवी बाबा आमटे करेंगे। इस संदर्भ में आनंद बन (चन्द्रपुर) में युवाओं का शिविर हुआ था। यात्रा में भाग लेने व. ले युवा को रोज 50–60 कि.मी. साईकिल चलाना, पथनाटक। सामूहिक गायन और अनुशासन पालन करना पड़ेगा। इस पते पर सम्पर्क करें –– **बाबा आमटे, आनन्द वन, बरोरा, जि. चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)**

संवाद–III

बुनियादी परिवर्तन की लोकतांत्रिक धारा : सीमा और संभावना

आपात् काल की घोषणा के दस बरस बाद आयोजित शिविर की रपट

हेमन्त

(25 से 27 जून, 1985–दिल्ली में हुए शिविर की रपट)

आज आपातकाल के घाव की ऊपरी परत उघड़ चुकी है। 1977 में आशा बंधी थी कि घाव सूखेगा। घाव गहरा था, सो शायद सूखने में कुछ समय लगे, लेकिन वह सूखेगा जरूर। दाग रह जाए तो बात अलग है। लेकिन पिछले दस साल के दौर ने यह जाहिर कर दिया घाव मिटाने के नाम पर उसे छिपाने की कोशिश हुई। 26 जून, 1975 को एक शब्द भारत की जनता की जुबान तक आकर अटक गया था। यह शब्द था–तानाशाही। विरासत में मिले शोषण–अत्याचार–उत्पीड़न, स्थायीत्व और अखंडता के नाम पर राज्य की दमनात्मक और हिंसात्मक शक्ति में अपरिमित वृद्धि तथा विकास एवं आधुनिकीकरण के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों की खुलेआम लूट एवं मानव को पहले जानवर और फिर मशीन बनाने की साहिश के ताने–बाने से बुनी वर्तमान

सत्ता की संस्कृति को पहचानने में उस 'तानाशाही' शब्द से मदद मिल सकती है। आज के संकट और चुनौतियों को तानाशाही मनोवृत्ति और सत्ता संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में सम्भवतः ज्यादा कारगर ढंग से समझा और महसूस किया जा सकता है।

असम, पंजाब और गुजरात के हालात उसी संस्कृति का एक पक्ष उजागर करते हैं तो भोपाल दूसरा पक्ष। एक तरफ कहीं शांतिमय संघर्षों को थकाने की, तो कही तिकड़म या असामाजिक तत्वों की मदद से या कुप्रचार करके जायज संघर्षों को समाप्त करने की साजिश तो दूसरी तरफ आधुनिकीकरण और विकास के नाम पर उपभोक्तावाद का जहर घोलने की दीर्घकालीन योजना। कुल मिलाकर पिछले दस वर्ष का अनुभव बताता है कि यह संस्कृति आम आदमी को उसकी अपनी जमीन से विस्थापित कर रही है, उसकी जड़ों पर प्रहार कर रही है और दूसरी तरफ विकास में हवाई किले का निर्माण करते हुए उसी जड़ से उखड़े विस्थापित मानव की आंखों में नकली सपने बुन रही है, ताकि वह अपनी मूल मानवीय संस्कृति की पहचान भुला दे।

लेकिन नहीं। भारतीय समाज का यह पूरा सच नहीं है। तस्वीर का एक और पहलू भी है। उसका एक छोटा सा उदाहरण है 25 से 28 जून तकदिल्ली गांधी शांति प्रतिष्ठान सभागार में हुए संपूर्ण क्रान्ति और बुनियादी परिवर्तन को लोकतांत्रिक धारा से जुड़े लोगों का सम्मेलन। सम्मेलन में–उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और दिल्ली से लगभग 90 प्रतिनिधि शामिल हुए। बिहार से बोध गया भूमि आन्दोलन, गंगा मुक्ति आन्दोलन और महाराष्ट्र के समता आन्दोलन से लेकन जनतंत्र समाज, पी.यू.सी.एल., सर्व सेवा संघ, समता संगठन, समता युवजन सभा और छात्र युवा संघर्ष वाहिनी से जुड़े सक्रिय कर्मियों के इस सम्मेलन ने यह जाहिर किया कि देश में एक और जीवन्त धारा भी प्रवाहित हो रही है जो आज भी बुनियादी परिवर्तन की दिशा तलाशती भारत की शोषित पीड़ित जनता की आवाज में असर पैदा करने में लगी हुई है। और सत्यान्वेषण और सृजन की परम्परा से जुड़ी हुई है।

सम्मेलन में आये प्रतिनिधियों का मकसद आपात्काल के रिसते घाव को देखना–दिखलाना नहीं था। मुख्य मकसद या आपात्काल के परिप्रेक्ष्य में आज की चुनौतियों को पहचानना साथ ही उन चुनौतियों के मुकाबले अपनी हैसियत को आंकने की खुली ईमानदार कोशिश करना।

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए बोध गया भूमि आन्दोलन का नेतृत्व करने वाली मजदूर किसान समिति के वरिष्ठ ग्रामीण नेता जानकीदास ने मानो सम्मेलन में होने वाले सहचिंतन की दिशा की ओर संकेत किया। उन्होंने सहज सरल स्वर एवं टूटी–फूटी हिंदी बोलते हुए इमरजेन्सी के पहले 1974 के आन्दोलन को याद किया उस आन्दोलन ने जानकीदास जैसे हजारों ग्रामीणों को आकर्षित किया था, क्योंकि उसमें बुनियादी परिवर्तन के साथ–साथ उनके और उनके जैसी आबादी की प्रत्यक्ष साझेदारी की बात थी। लेकिन इमरजेन्सी ने इन दोनों बातों पर प्रहार किया। इमरजेन्सी खत्म होने के बावजूद बुनियादी परिवर्तन की बातें पिछड़ गयीं। लोकतंत्र की पुनःस्थापना की बड़ी–बड़ी बातें करने वालों को भी तानाशाही का स्वाद मिल चुका था। जानकीदास ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि 1967 से आज तक पूरे देश में बड़े–बड़े दलों में जो हुआ वही धीरे–धीरे बुनियादी परिवर्तन करने वाले छोटे–छोटे समूहों में हुआ। पदों पर कब्जा और उसका गलत इस्तेमाल। त्याग नहीं बल्कि भोग। यही तो तानाशाही है।

आयोजन टोली की ओर से बोलते हुए विजय प्रताप ने यह कहते हुए कि आज का सत्तारूढ़ दल देश की अधिसंख्य आबादी को 18वीं शताब्दी में फेंक रहा है और छोटे से हिस्से को 21वीं शताब्दी में यह स्वीकार किया कि अन्य ताकतें, खासकर विभिन्न बुनियादी मुद्दों पर जमीन से जुड़कर लड़ने वाली लोकतांत्रिक ताकतें थकान के दौर से गुजर रही हैं। कारण केवल इतना नहीं कि चुनौतियाँ बड़ी हैं और उनके बोझ से हर संगठन दबा–सा है। इससे बड़ा कारण है संगठनात्मक जड़ता, चुनौतियों को समझकर संगठन के घरौंदे से बाहर निकल कर भी संघर्षों के बृहत्तर प्रवाह बनाने की कोशिशों में विलम्ब संगठनों को तोड़ रहा है और कार्यकर्त्ताओं को थका रहा है क्योंकि जब समान मूल्य निष्ठाओं वाले लोग केवल शैली या अपने अतीत के कारण अलग–अलग घेरों में रहेंगे तो स्वाभाविक है कि मूल्य परम्पराओं और बुनियादी कार्यक्रमों की बजाय बहस व्यक्तियों और छोटे–छोटे शैलीगत् सवालों में उलझी रहेगी। ऐसे में जरूरत इस बात की है कि वृहत्तर संघर्ष की धारा में शामिल होकर संगठनों को टूटने और कार्यकर्त्तओं को थकने से बचायें। उन्होंने सम्मेलन के उद्देश्य को दोहराते हुए कहा कि 1974 में छात्र–युवा आन्दोलन के रूप में प्रकट हुए असंतोष को लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने धीरे–धीरे जन–आंदोलन के रूप में बदलना शुरू किया। आन्दोलन की पहचान सिर्फ भ्रष्टाचार अथवा मंहगाई के खिलाफ न होकर बुनियादी बदलाव व संपूर्ण क्रान्ति से होने लगी। आम जनता अनुशासित व शांतिमय ढंग से सत्ता की लाठी–गोली का सामना करने के लिए सड़क पर आ गयी थी।

विचारधारा के स्तर पर संगठित जमातों में सर्वोदयी, समाजवादी, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के अतिरिक्त कई मार्क्सवादी भी इस आन्दोलन में शामिल हुए। जनता के बीच जाने और मिलकर काम करने की वजह से इन धाराओं में

विशेषकर इनकी युवा जमातों में नयी चिन्तन–प्रक्रिया शुरू हुई। आन्दोलन में अधिकांश युवा निर्दलीय थे, वे सम्पूर्ण क्रान्ति के नाम से नयी पहचान चाहते थे, सर्वोदय का युवा संगठन तरूण शांति सेना, समाजवादियों की युवजन सभा, आर. एस.एस. का विद्यार्थी परिषद् आन्दोलन से जुड़कर भी विशाल युवा शक्ति को अपने–अपने संगठन के घेरे में समेटने में असमर्थ थे।

26 जून, 1975 को सम्पूर्ण क्रान्ति की आग देश भर में फैलने और सत्ता की भीतरी लड़ाई के डर से आपात्काल की घोषण हुई। संगठनों के पुनर्चिन्तन और आम लोगों की सम्पूर्ण क्रांति के नाम पर नयी पहचान बनने की प्रक्रिया शैशवास्था में ही अवरूद्ध हो गयी।

आपात्काल की समाप्ति के बाद ऐसा लगा था कि यह प्रक्रिया पुनः शुरू होगी और उसमें तेजी आयेगी। लेकिन पिछले 10–11 वर्षों के अनुभव से स्पष्ट है कि कोई संगठन या विचारधारा आम लोगों की बुनियादी परिवर्तन की राजनीति को नयी पहचान नहीं दे पाया।

सम्मेलन के सामने मुख्य प्रश्न यह है कि क्या दस वर्ष पूर्व जो प्रक्रिया अवरूद्ध हुई थी उसे फिर शुरु किया जा सकता है? आयोजन में शामिल साथियों का सपना है कि प्रारम्भ में संघर्षशील सर्वोदय परिवार, वाहिनी परिवार, जनतंत्र समाज और समाजवादियों के गैर दलीय संगठन नजदीक आयें, साझा घेरा बनायें। यह घेराभारतीय समाज की बेहतर और मानवीय बनाने वाली धारा को गति दे। यह स्वीकार करने में हिचक नहीं कि किसी बड़े परिवर्तन के लिए देश जब एकजुट होगा। तो हमारे सहित सभी स्थापित घेरे टूटेंगे, फैलेंगे, मिलकर काम करने को तैयार होंगे अथवा अलग हो जायेंगे मूल दृष्टि यह है कि हमारी धारा विकसित हो और अन्य धाराओं से संवाद का सिलसिला चले ताकि देश में बुनियादी परिवर्तन और नयी संस्कृति में निर्माण की प्रक्रिया तेज हो।

बहस की शुरूआत करते हुए सम्मेलन के प्रथम सत्र के अध्यक्ष समता संगठन के युवा नेता श्री के.बी. सहाय ने नागरिक अधिकारों के सम्बन्ध में मार्के की बात कही। उन्होंने आपात्काल के दौर में धनबाद में हुए प्रतिकार का विस्तृत वर्णन किया और कहा कि वहाँ के कई साथियों ने तानाशाही के खिलाफ लड़ने के लिए मौत का आलिंगन करने का प्रण किया। आज नागरिक आजादी और अधिकारों की बातें बहुत होती हैं। सारी वैचारिक प्रखरता के बावजूद वे संवेदनहीन लगती है। उन बातों से एक–दूसरे के आत्मीय होकर साथ मिलकर नागरिक आजादी और अधिकारों के लिए मर–मिटने की ललक नहीं पैदा होती। 1974 के आन्दोलन में हमें संवेदना की नयी दृष्टि मिली थी और उसी की बदौलत 1975 में हमने तानाशाही का डट कर मुकाबला किया। साथियों ने एक–दूसरे के लिए मर मिटने की कसम खायी।

दिल्ली जनतंत्र समाज के अध्यक्ष प्रख्यात पत्रकार कुलदीप नैय्यर ने कहा कि लोकतंत्र बनाम तानाशाही की लड़ाई में व्यवस्थापरिवर्तन की बात गौण हो गयी और सत्ता परिवर्तन सही मुख्य उद्देश्य बन गया। इससे जे.पी. के नेतृत्व में बुनियादी परिवर्तन की इच्छा से जो नया युवा समुदाय आन्दोलन में शरीक हुआ था उसमें भटकाव आया। उन्होंने आज भी बुनियादी संघर्षों के लिए सघन क्षेत्रों में कार्यरत युवा एवं जन संगठनों को छोटे–छोटे 'चिरागों' की संज्ञा दी। ये चिराग आज के अंधेरे को मिटाने में अक्षम हैं। कल की सुबह का रास्ता दिखने के लिए उनका टिमटिमाना जरूरी है। लेकिन ये चिराग अपनी रोशनी बढ़ाने और नये चिराग पैदा करने में असमर्थ क्यों साबित हो रहे हैं? कुलदीप नैय्यर ने उपस्थित प्रतिनिधियों के सामने यह कड़वा सच प्रकट किया कि इसका कारण शायद यह है कि वर्तमान के घने अंधेरे के खिलाफ टिमटिमाता प्रत्येक चिराग अपने को स्वायत्त ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मान रहा है। उन्होंने नेतृत्व के संकट और सुविधापरस्त भारतीय बुद्धिजीवियों के व्यक्तिवादी सोच का भी पर्दाफाश किया, जो सत्ता के इर्द–गिर्द नाचते हुए बुनियादी परिवर्तन और उसमें आम आदमी की सीधी साझेदारी को नकारता है और उसके प्रति उदासीन नहीं बल्कि उपेक्षापूर्ण रवैया रखता है।

विख्यात बुद्धिजीवी और पी.यू.सी.एल. के अध्यक्ष प्रो. रजनी कोठारी ने सारे संघर्ष को राज्य और समाज के बीच के संघर्ष के रूप में रखा। यह संघर्ष आपात्काल से शुरू हुआ और जो आज भी जारी है। राज्य–शक्ति समाज शक्ति को तोड़ देना चाहती है। राजीव गांधी विकास और नकली आधुनिकीकरण के नाम पर देश की आम जनता से उसकी कीमत अदा करने की बात कह रहे हैं। एक तरफ वे झूठे सपनों से आम आदमी की समझ को कुंद कर रहे हैं और दूसरी ओर राज्य शक्ति अफसरशाही, पुलिस और सेना को अपरिमित ताकत से लैस कर रहे हैं। आज के हालात आपातकाल के दौर से भी अधिक खराब और खतरनाक हैं। इसका एक और पहलू भी है। आजादी के बाद आपातकाल में हमने बहुत बड़ी कीमत दी। उसके परिणामस्वरूप राजनीति का स्वरूप और चरित्र बदला। तानाशाही पर लोकतंत्र की पहली विजय के साथ ही नये–नये संगठन प्रकट हुए और समाज में सामान्यजन की भागीदारी के साथ ही राजनीति में नये तत्व और नये मुद्दे सामने आये। शोषित के हक की लड़ाई को आवाज मिली। साम्प्रदायिक दंगों के खिलाफ आवाज बुलन्द हुई। पर्यावरण का मुद्दा नागरिक अधिकारों से जुड़ा। महिलाओं की चेतना के साथ नागरिक अधिकारों के

नये सवाल सामने आये। लेकिन तानाशाही शक्तियों ने भी अपना चोला बदला। उसने अपनी क्रूर प्रवृतियों को लोकतन्त्र और वैज्ञानिकता के आवरण में ढक कर लोकतंत्र की बुनियाद पर ही प्रहार करना शुरू किया। राजनीति को गुण्डागर्दी से लैस किया। भारतीय सामाजिक संरचना की विविधता को खत्म करने की योजनाबद्ध साजिश की। इसके खिलाफ विपक्षी राजनीतिक दल असमर्थ और पंगु साबित हुए हैं क्योंकि वे किसी नयी राजनीतिक शक्ति और संरचना की कल्पना नहीं कर पाये। ऐसे में 'ग्रास–रूट लैवल' पर काम करने वालों का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। आज नयी राजनीतिक सोच–शक्ति पैदा करने की जरूरत है। केन्द्रित सत्ता के खिलाफ विकेन्द्रित सत्ता के मौलिक सोच के आधार पर व्यापक संघर्षों का सूत्रपात करना होगा। क्या यह बुनियादी परिवर्तन से जुड़े विभिन्न लोकतांत्रिक समूहों और संगठनों के एक व्यापक और तेज धारा से तब्दील हुए बिना सम्भव है ?

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के निजी सचिव श्री सच्चिदानन्द ने आपात्काल और उसके बाद की स्थितियों की विस्तार से चर्चा करते हुए कहा कि इमरजेन्सी से इन्दिरा गांधी, राजीव गांधी और सत्तारूढ़ दल ने सबक लिया। विपक्षी राजनीतिक दलों ने सबक लेने के बजाय खुद को वर्तमान चुनौतियों के समक्ष बौना साबित किया। लेकिन सम्पूर्ण क्रांति और बुनियादी परिवर्तन की लोकतांत्रिक धारा से जुड़े लोगों की भूमिका का निर्मम विश्लेषण किये बिना न आज के संकट को सही ढंग से समझना संभव है और न उसका समाधान ढूंढ पाना। यह विडम्बना मात्र नहीं बल्कि क्रूर सच है कि सम्पूर्ण क्रान्ति धारा से जुड़े लोग बुनियादी परिवर्तन के संघर्ष में ईमानदारी से लगकर भी व्यापक राजनीति में अपनी कारगर भूमिका तय करने में असफल रहे, चुनौतियों की समझ के बावजूद नया राजनीतिक औजार गढ़ने में असमर्थ साबित हुए। चुनौतियां बड़ी हैं, तो संपूर्ण क्रान्ति की इस असमर्थता का संकट भी बड़ा है। संपूर्ण क्रान्ति के तहत राज्य सत्ता की अवधारणा को मूर्त्त रूप देने में विफल लोकतांत्रिक धारा के बुनियादी संघर्षों में आज ठहराव आ गया है, यह सही है कि बुनियादी संघर्ष के बिना हर राजनीतिक औजार कुंद होता है अथवा केन्द्रित सत्ता को ही मजबूत करता है। लेकिन तथ्य यह भी है कि राजनीतिक ताकत और औजार के अभाव में बुनियादी संघर्षों और औजार के अभाव में बुनियादी संघर्ष और राजनीतिक औजार के बीच के सम्बन्ध सम्पूर्ण क्रांति धारा के सक्रिय कर्मी समझ नहीं पा रहे हैं। बिहार आन्दोलन के दौर में ये सम्बन्ध जनता सरकार, जन संघर्ष समिति और छात्र संघर्ष समिति के रूप में सामने आये थे। आपातकाल के बाद के दौर में लोक समिति, स्वराज संगम, मतदाता परिषद आदि के रूप में राजनीतिक औजार गढ़ने की कोशिश हुई लेकिन वह कोशिश अधूरी है, चिन्तन भी अधूरा है। वर्तमान सत्ता की आक्रामक संस्कृति और भारतीय समाज में व्याप्त बुनियादी संकट के परिप्रेक्ष्य में चिन्तन के अधूरेपन को समझना होगा।

महाराष्ट्र में समता आन्दोलन से जुड़े प्रतिनिधि संजीव साने ने दिल्ली सम्मेलन की पहल को आवश्यक बताते हुए कहा कि महाराष्ट्र में यह प्रक्रिया कई चरण आगे बढ़ चुकी है। वहां नामांतर आन्दोलन जैसे व्यापक कार्यक्रमों के जरिये बुनियादी परिवर्तन के लोकतांत्रिक धारा के जुड़े संगठनों का सम्मिलित प्रवाह बना है। अब तो साल में एक बार विषता निर्मूलन शिविर भी होता है। जिसमें पूरे प्रान्त के लोकतांत्रिक एवं बुनियादी संघर्षों से जुड़े संगठन शामिल होते हैं। मिलकर चिन्तन, बहस एवं विश्लेषण कर भविष्य की दिशा तय करते हैं। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप एक बड़ी बात यह हुई कि दलित और दलितेतर के नाम से बंटे संगठन एक–दूसरे के करीब आये हैं और बुनियादी मुद्दों पर सहचिंतन और कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष के लिए तैयार हुए हैं।

गंगा मुक्ति आन्दोलन के युवा प्रतिनिधि अनिल प्रकाश ने वर्तमान संकट के व्यापक पहलुओं पर बोलते हुए कहा कि आज का सबसे बड़ा खतरा ठीक उसी तरह का लगता है जिस तरह का खतरा आजादी के तुरंत बाद देश के आर्थिक–राजनीतिक चिंतन और व्यवस्था की नींव डालने के वक्त उभरा था। यह वह समय था जब महात्मा गांधी की नीतियों की पूर्ण–रूपेण उपेक्षा की गयी। आज उसी तरह का संकट और घनीभूत होकर उपस्थित हुआ है। नेहरू जी ने तरक्की का जो नक्शा बनाया उसमें जनता बह गयी। देश उसे भुगत चुका है। राजीव गांधी की नीतियां उसी प्रक्रिया को त्वरित और विस्तृत करने के लिए हैं। कम्प्यूटरीकरण, बहुद्देशीय पूँजी–निवेश देश की आम जनता को निगलने के लिए आतुर है। नकली आधुनिकीकरण का घोड़ा बेलगाम दौड़ रहा है। आज की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि उस बेलगाम घोड़े को कौन थामेगी ? विडम्बना यह है कि राजीव गांधी की आधुनिकीकरण के विरोध को आधुनिकता के चिन्तन का विरोध और दकियानूस लोगों का फितूर माना जाता है।

भवी कार्यक्रम की दिशा पर विचार–विमर्श करते समय तीन–चार ठोस निष्कर्ष निकले जो पूरी धारा के चिन्तन को संकेत करते हैं। प्रत्येक संगठन ने इस वास्तविकता को नये सिरे से पहचाना कि विपरीत परिस्थितियों के बावजूद सम्मेलन में शामिल किसी भी व्यक्ति, समूह या संगठन में मूल्य और अन्तिम जन के प्रति प्रतिबद्धता में कोई फर्क नहीं आया है। किसी लोभ या डर से यहां किसी तरह के समझौते की तनिक भी गुंजाइश नहीं है। जिस थकान और सुस्ती की बात की जा रही है, वह खत्म हो सकती है अगर हम खुद को सांगठनिक

विविधताओं के बावजूद एक धारा के रूप में विकसित करें। बुनियादी मुद्दों पर अन्तिम जन की सक्रिय साझेदारी में सघन क्षेत्रों में संघर्ष की परिकल्पना सही है। लेकिन अगर आज की चुनौतियों के मुकाबले के लिए धारा की व्यापक पहचान बनानी है तो एक कदम और आगे बढ़ना होगा। वह यह कि हम अब तक विविध संगठनों के अलग–अलग सघन क्षेत्र बनाते आये हैं। लेकिन अब 'धारा के सघन क्षेत्र' के सोच विकसित करें और पहल करें। इसके लिए सबसे पहले सघन क्षेत्रों में आपसी सम्पर्क और संवाद की जरूरत है। दूसरी सबसे बड़ी जरूरत है सम्पूर्ण क्रांति और बुनियादी परिवर्तन की। लोकतांत्रिक धारा से जुड़े संगठनों को एक साझे मंच पर लाने की ताकि देश में चल रहे किसान, महिला आदिवासी आन्दोलन की गतिदिशा को पहचानते हुए उससे जुड़े, पंजाब, असम, गुजरात अथवा भोपाल जैसे हादसों के प्रति देश की पूरी आबादी को सचेत करते हुए वर्तमान सत्ता की साजिशों का भण्डा फोड़ किया जा सके तथा मानवीय मूल्यों पर आधारित जन–संघर्षों में पहल किया जा सके।

शब्द – 2,888

———

वर्तमान कानूनों में बदलाव : न्यायालयों के जन विरोधी फैसलों पर बम्बई में सम्मेलन 9 नवम्बर 85 को

- उच्चतम न्यायालय द्वारा संविधान की धारा 311 (2)ब पर दिये गए फैसले के अनुसार किसी भी सरकारी कर्मचारी को कभी भी बिना कारण बताये निकाला जा सकता!
- बम्बई के फुटपाथ वाले फेरीबालों/दुकानदारों को कभी भी उच्चतम न्यायालय के फैसले के अनुसार उजाड़ा जा सकता है।
- उच्चतम न्यायालय के फैसले के अनुसार नगरपालिका क्षेत्र में बनी झुग्गी–झोंपड़ी में रहने वाले गरीबों को बिना मुआवजा या वैकल्पिक आश्रय स्थल से कभी भी उजाड़ा जा सकेगा।
- किसी भी निर्दोष नागरिक को नये संसोधित 'राष्ट्रीय सुरक्षा कानून' के तहत दो साल तक बिना कारण बताये नजर बन्द रखा जा सकता है।
- दो आतंकवादी विरोधी कानूनों के अनुसार किसी को भी उग्रवादी कहकर गिरफ्तार करने पर, उसे निर्दोष बनने के लिए सबूत देने होंगे, नहीं तो बिना गवाह का नाम जाने उस को मृत्यु दण्ड मिल जायगा।

यह सम्मेलन 9 नवम्बर 1985 को बम्बई में होगा। मुख्य वक्ता––न्यायविद् वी.एम. तारकुडें, गोविन्द मुखौटी, अशगर अली इन्जीनियर, के.जी. कन्ना बिरेन, जार्ज फर्नांडिस तथा आर.पी. कार्णिक।

लोकशाही हक संरक्षण समिति
(सी. पी. डी. आर.)
द्वारा––सुपर बुक हाऊस, सिन्ध चैम्बर्स, कोलाबा, बम्बई–400005

अध्ययन

बाल स्वास्थ्य––आज के विकास प्रयासों के संदर्भ में

(**वनजा रामाप्रसाद** द्वारा कर्नाटक में किए गए अध्ययन के मुख्य निष्कर्षों सम्बन्धी अंग्रेजी लेख के आधार पर यह लेख **रितु प्रिया** ने तैयार किया है। ––सं.)

कुपोषण व बच्चों में दस्त जैसी बीमारियों के कारण, उनके असर व उनके हल के लिए किए जा रहे प्रयासों से सम्बन्धित इस अध्ययन से कुछ रोचक व महत्वपूर्ण प्रश्न उभरे हैं। अध्ययन के कुछ निष्कर्ष आज की सामान्य मान्यताओं की पुष्टि करते हैं, कुछ अभी विवादास्पद प्रश्नों पर प्रकाश डालते हैं, शेष निष्कर्षों से कुछ नए बिन्दु उजाकर हुए हैं।

मुख्य निष्कर्ष व उनसे जुड़े व्यापक प्रश्न संक्षेप में कुछ यों हैं –

1. बच्चों पर मां के गर्भ से ही खुराक की कमी का असर होने लगता है। जो बच्चे कमजोर पैदा होते हैं वह बाद में भी कम बढ़ते हैं।
2. बच्चों की खुराक में किस तत्व की सबसे ज्यादा कमी रहती है यह मुद्दा काफी बहस का विषय रहा है। कुछ समय तक 'प्रोटीन' की कमी का बहुत हौआ रहा। कुछ पश्चिमी विशेषज्ञों ने कहना शुरू किया कि बचपन में प्रोटीन की कमी के कारण 'तीसरी दुनिया' का एक बड़ा हिस्सा मन्द–बुद्धि का हो रहा है। पर अब यह भ्रम साबित हो चुका है और मूल कमी प्रोटीन की नहीं 'कैलोरी' की है। इसका मतलब है कि किसी खास प्रकार की खुराक की नहीं बल्कि भर–पेट खाने की ही कमी है।
3. राष्ट्रीय पोषण अनुश्रवण ब्यूरो (नेशनल न्यूट्रिशन मांनीट्रिरिंग ब्यूरो) के देश–व्यापी अध्ययन के अनुसार कर्नाटक में 65.5% बच्चों को ही पर्याप्त कैलोरी और प्रोटीन मिल पाते हैं। लेखिका के अध्ययन ने यह आंकड़ा 68.5% पाया है।

4. उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि यह कुपोषण केवल गरीब तबकों तक ही सीमित नहीं है। ग्रामीण औरतें, छोटे और बड़े सभी प्रकार के किसान परिवारों में अपने काम में इतनी व्यस्त रहती है कि बच्चों पर ध्यान नहीं दे पातीं।
5. परन्तु खुराक की इस कमी व इसकी वजह से होने वाली बीमारियों, खासकर दस्त के फलस्वरूप निचले तबकों में बच्चों का विकास ज्यादा अवरुद्ध होता है। इस तबके में अन्य तबकों से कम–से–कम 20% अधिक स्टन्टिड ग्रोथ यानि अवरुद्ध विकास वाले बच्चे देखे गए। घरों की खराब स्थिति, छोटी जगह में परिवार के ज्यादा तथा सफाई की हालात का बीमारी से सीधा रिश्ता सब जानते हैं।
6. 'तीसरी दुनिया' के बच्चे औरों से छोटे होते हैं। इस तथ्य से क्या निष्कर्ष निकाले जायें इस पर काफी विवाद चल रहा है–क्या छोटे होने के बावजूद वह पूर्णतः स्वस्थ हैं, या छोटा होना स्वस्थ होने और क्रियागत क्षति (फंक्शनल इम्पैयरमैंट) के बीच की स्थिति है ? कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि शरीर का छोटा होना कम खुराक की परिस्थिति के अनुरूप शरीर को स्थायी तौर पर अभ्यस्त बनाना है। छोटे कद के बच्चे पूर्णतः स्वस्थ हैं, यानि उन्हें अधिक खुराक उपलब्ध कराने की आवश्यकता नहीं। कुछ दूसरे विशेषज्ञ मानते हैं कि छोटा शरीर विकसित तो है पर 'स्वस्थ' स्थिति नहीं है क्योंकि छोटे शरीर में पूरी क्षमता का विकास नहीं हुआ। ऐसे बच्चों की बीमारी से लड़ने की शक्ति कम होती है। कुछ और विशेषज्ञ (प्रोटीन की कमी वाली थ्योरी की तरह) मानते हैं कि शरीर आकार में छोटा होने पर मानसिक व क्रियागत विकास में भी पिछड़ जाता है। यह बहस वैज्ञानिक दृष्टि के साथ–साथ राजनैतिक कारणों से भी महत्वपूर्ण है। यदि आप मान लें कि कुपोषण से 'छोटे' रह जाने वाले बच्चे भी पूरी तरह स्वस्थ हैं तो गरीबी रेखा से नीचे (अत्यंत गरीब) लोगों की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा इस रेखा से ऊपर मान लिया जायेगा।

इसको जांचने के लिए काम की क्षमता, प्रजनन क्षमता, संज्ञानात्मक क्षमता (जानने, समझने और मनन करने की क्षमता), संक्रांमक रोगों के जोखिम को सहने की क्षमता, सामाजिक व्यवहार आदि का अध्ययन किया गया। इससे क्रियागत अक्षमता की थ्योरी को सही मानने के लिए कोई आधार नहीं मिला। पर साथ ही यह बात भी नकारी गई कि 'छोटे' बच्चे पूर्णतः स्वस्थ हैं। कर्नाटक के ग्रामीण क्षेत्रों के अध्ययन में पाया गया है कि अवरुद्ध विकास वाले बच्चों में दस्त का प्रकाप ज्यादा था। अन्य कई अध्ययनों में भी पाया गया है कि कुपोषित बच्चों को बीमारी ज्यादा होती है और वह ज्यादा गंभीर रूप ले लेती हैं। परन्तु ज्यादा बीमारी, कुपोषण के कारण है या दोनों का एक ही कारण है–गरीबी व उससे जुड़ा वातावरण ?

7. अधिकांश अध्ययनों की सीमा रही है कि वह सूखे महीनों के आंकड़ों पर बल देते हैं। इस अध्ययन में वर्ष के अलग–अलग समय पर बच्चों के स्वास्थ्य पर अवर को देखने की कोशिश की गई। जो लोग अपनी आजीविका के लिए खेती पर ही निर्भर हैं उनके लिए कटाई के एकदम पहले बरसात का मौसम, सबसे मुश्किल समय है। घर में अन्न का स्टाक कम हो जाता है, बाजार में उसके दाम ऊँचे हो जाते हैं, काम अधिक और कठिन होता है। संक्रामक रोगों का प्रकोप होता है, कुपाषण के फलस्वरूप बीमारी व मृत्यु दर बढ़ जाती है और शरीर का वनज घटता जाता है।
8. इस अध्ययन में पाया गया है कि बरसात के मौसम में दस्त जैसी बीमारियों का प्रकोप व उसकी गंभीरता 1.5 से 4.4 गुणा बढ़ गई। साथ ही अवरुद्ध विकास वाले बच्चों की संख्या 1.3 गुणा बढ़ गई। यह फर्क बदली हुई खुराक के अनुरूप ही था। पर्याप्त प्रोटीन व कैलोरी लेने वाले बच्चों का प्रतिशत कटाई के मौसम के बाद 75% था और कटाई के पहले 42%। यानि कटाई के बाद अनाज तथा पैसा उपलब्ध होने से कुपोषण की स्थिति में इतना फर्क आ गया।
9. स्वास्थ्य पर योजना बनाने वाले साफ पीने का पानी उपलब्ध कराने की सिफारिश करते रहे हैं। पर कुछ अध्ययनों ने दिखाया है कि साफ पानी मिलने पर भी बच्चों को दस्त लगने की दर में कोई विशेष कमी नहीं आई। इस बात से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि बच्चों के स्वास्थ्य के कई पहलू एक–दूसरे से जुड़े हैं। इस मुद्दे को समग्र दृष्टि से देखें तो विभिन्न पहलुओं के आपसी रिश्ते समझ में आने लगते हैं। साफ पानी मिले परन्तु अन्य वातावरण दूषित ही रहे, मल व्यनन् का तरीका न हो, व्यक्तिगत स्वच्छता न रखी जाए, या इसके लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध न हो, कुपोषण हो, बच्चे की देख–रेख के लिए माँ या किसी और जिम्मेदार व्यक्ति के पास समय न हो जैसे अनेक मुद्दे बच्चों के स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। यह रिश्ते इतने जटिल है कि एक पहलू पर काम करने के लिए किसी दूसरे पहलू का सहयोग और उसकी समझ आवश्यक हो सकती है और इन पर काम करने से कहीं दूर असर पैदा हो सकता है। प्रोटीन की कमी की बात, छोटे बच्चे स्वस्थ हैं या कार्यगत रूप से क्षतिग्रस्त यह ऐसे मुद्दे हैं जिनका शारीरिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रश्नों के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता

समीकरणों से भी रिश्ता है। हाल ही में प्रोटीन की कमी की वजह से मंद बुद्धि होने की बात उठने के साथ–साथ पश्चिमी बहुराष्ट्रीय निगमों एवं सरकारों आदि के समर्थन से भारत में सोयाबीन जैसी व्यवसायिक फसलों को उपजाया जाये, इसका प्रचार बहुत तेजी से बढ़ा। हजारों एकड़ जमीन पर अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिए सोयाबीन पैदा किया जा रहा है। दूसरी ओर द्वितीय विश्व युद्ध में पश्चिमी यूरोप में प्रोटीन का कुपोषण काफी व्यापक था, लेकिन आज तक किसी ने पश्चिमी यूरोप की वर्तमान बालिग पीढ़ी के मंद बुद्धि होने के बारे में बहस करने की हिम्मत नहीं की।

वनजा रामप्रसाद ने कुछ प्रश्न उठाए हैं––

1. 0–3 वर्ष के बच्चों में प्रोटीन–कैलोरी की कमी की समस्या क्या केवल आर्थिक स्तर उठने से हल हो जाएगी ?
2. पोषण और चिकित्सा–सेवाएं दोनों का महत्व है। इनमें से किसको प्राथमिकता दी जाए ?
3. केवल साफ पानी उपलब्ध कराने से ही दस्त जैसी बीमारियां कम हो जाएंगी या व्यक्तिगत सफाई को बढ़ाने के लिए भी प्रयास करना चाहिए ?
4. कटाई से पूर्व के समय में खुराक की कमी पूरी करने के क्या विशेष उपाय अपनायें जाएं ?
5. क्या हमारी स्वास्थ्य व्यवस्था बरसात के मौसम में ग्रामीण बच्चों की जरूरतें पूरी करने के लिए सक्षम हैं ?

यह लेख एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात की ओर संकेत करता है। वैकल्पिक स्वास्थ्य व्यवस्था पर काम कर रहे कुछ लोग आर्थिक व्यवस्था के मुद्दों पर ही बल दे रहे हैं। क्या वह वही गलती नहीं दोहरा रहे जो पहले हुई है यानि समस्या के किसी एक ही पक्ष पर ही बल देने की। स्वास्थ्य के लिए व्यक्तिगत, सांस्कृतिक व सामाजिक सभी पहलू महत्वूपर्ण हैं और उन्हें न कहने का मतलब क्या अधूरी, एकांगी बात कहना नहीं होगा ?

शब्द संख्या – 1578

———

लोकायन को पुरस्कार

प्रिय मित्र,

आपने सुना या पढ़ा होगा कि लोकायन को अन्तर्राष्ट्रीय 'राईट लाईवलीहूड अवार्ड (सही जीवन की खोज हेतु अवार्ड) पुरस्कार मिला है। यह पुरस्कार यूरोप में वैकल्पिक नोबेल पुरस्कार के नाम से विख्यात है। यह पुरस्कार लोकायन के साथ–साथ यूरोप के एक समाजवादी देश हंगरी में पर्यावरण पर काम करने वाले संगठन 'डैन्युब सर्कल' (इस संगठन ने जन संघर्षों के माध्यम से बड़े–बड़े बांध रोके व हजारों लोगों को उजड़ने से बचाया) को भी मिला है। इसके अलावा कैनेडा में एक कृषि उद्योग की बहुर्राष्ट्रीय कंपनी द्वारा परम्परागत बीजों के विनाश किये जाने के विरोध में कार्यरत 'अन्तर्राष्ट्रीय परम्परागत स्रोतों पर शेध' नामक समूह के पैट मुनी तथा कैरी फौलर को भी यह पुरस्कार मिला है।

अभी हमें अवार्ड के बारे में विस्तृत जानकारी नहीं मिली है, पर संक्षेप में युद्ध के खतरे, पर्यावरण के विनाश, तीसरी दुनिया की भौतिक गरीबी तथा औद्योगिक देशों के संस्कृतिक ह्रास जैसे कारणों से दुनिया में उत्पन्न समस्याओं के सही व व्यावहारिक हल ढूंढ़ने वाले समूहों/आन्दोलनों को समर्थन, मान्यता तथा सम्मान देने हेतु इस पुरस्कार को स्थापित किया गया है। वैसे इसे पुरस्कार का मुख्य उद्देश्य तो वर्तमान जन–विरोधी व्यवस्था के उच्चतम श्रेणी में स्थापित लोगों की मान्यताओं के विकल्प में कार्यरत समूहों/व्यक्तियों को सम्मान देना है; पर यह सम्मान इसलिये भी दिया जाता है ताकि जनोन्मुखी विकास की प्रक्रिया में कार्यरत ऐसे समूह जो वास्तव में पहले से ही अपने प्रकल्पों के द्वारा काफी असरकारी प्रभाव डाल रहे थे, उन्हें थोड़ा–सा सहयोग व सम्मान देने से, वे ज्यादा कामयाबी हासिल कर सकेंगे।

लोकायन को एक बड़ा समूह मानकर यह पुरस्कार दिया गया है। लोकायन को मिलने वाले इस पुरस्कार का उद्देश्य लोकायन के साथ जुड़े देश के विभिन्न हिस्सों में बुनियादी परिवर्तन हेतु काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं और संगठनों को सामूहिक सम्मान (प्रतिष्ठा) देना है –– जिसमें हम सबको, आपको तथा कई अन्य को शामिल माना गया है। ऐसे वक्त में जब नागरिक अधिकार संगठनों व बुनियादी परिवर्तन के लिये काम करने वाले समूहों पर हमले ही रहे हों, यह पुरस्कार राजनैतिक समर्थन के साथ–साथ आर्थिक स्थायित्व के लिये भी काफी मददगार होगा। अभी यह स्पष्ट नहीं है कि वास्तव में पुरस्कार की राशि कितनी है या इसे कैसे (तीन/चार) समूहों में बांटा जायेगा, लेकिन अनुमान है कि हमें 1.2 से 2 लाख रुपये के बीच की कोई राशि मिलेगी। हम इस राशि को स्थाई निधि या धरोहर कोष के रूप में रखेंगे, जिसके बारे में हम पहले भी चर्चा

चलाते रहे हैं, ताकि हम अपनी गतिविधियां आत्मनिर्भरता के साथ या असुरक्षा भाव व लगातार की चिन्ता से मुक्त होकर चला सकें। अभी से एक वर्ष बाद तक बुलेटिन को आत्मनिर्भर बनाने में अगर हम कामयाब रहे तो अलग से 5 लाख रुपयों की धरोहर राशि की जरूरत पड़ेगी, जिससे हमें लोकायन की अन्य गतिविधियां चलाने हेतु 50 से 75 हजार रुपये की धनराशि प्रति वर्ष प्राप्त हो सकेगी। हमें आशा है कि आपसबके सहयोग से अगले एक वर्ष में यह दोनों लक्ष्य हम हासिल कर सकेंगे। जैसा कि आप जानते हैं कि अभी हम अपने सहकर्मियों व दोस्तों से बुलेटिन हेतु वार्षिक चनदा तथा व्यक्तिगत अनुदान मांगने में व्यस्त रहे हैं, इस काम में हम विगत् 6–8 माह में लगभग हजार लोगों से 50,000 रुपये इकट्ठा करने में सफल हुए हैं। पर हमें इस बात का भी एहसास हुआ है कि परिवर्तन के काम में लगे हमारे जैसे संगठनों के लिये रुपये इकट्ठा करना कितना मुश्किल काम है। इकट्ठा की गई अधिकांश धनराशि अब व्यावसायिक तौर से निकलने वाली हमारी बुलेटिनों में ही खर्च होती है। इसके अलावा मानदेय या वेतनों और दफ्तरी खर्चों में हर माह 5000 रु. खर्च होते हैं। बुलेटिनों हेतु वार्षिक सहयोग में लगातार बढ़ोत्तरी के बावजूद हमें अच्छा–खासा घाटा हो रहा है, जिसे हमने मानदेय न देकर या अपने सहकर्मियों व मित्रों के अतिरिक्त आमदनी से पूरा किया। इतनी असुरक्षा भाव में हमारी गतिविधियोंका चलना मुश्किल है। अपनी स्वायत्ता व स्वतंत्र पहचान हेतु हमें अपना एक अलग दफ्तर चाहिए, अतः हमें अलीपुर रोड वाले दफ्तर को पूरे तौर पर ले लेना पड़ेगा और उसका पूरा किराया देना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अधिक पैसों की जरूरत है।

बुलेटिन व दिल्ली कार्यालय के अलावा अपनी क्षेत्रीय गतिविधियों और सघन क्षेत्रों के लिये न्यूनतम सहयोग राशि जुटाना अभी की सबसे बड़ी जरूरत है। हमारा प्रभाव व अस्तित्व अभी भी इसलिये बना हुआ है क्योंकि विगत् वर्षों में हमने जो काम किया था, उसकी मान्यता हमें अब मिल रही है और हमारे लेखन व विभिन्न मुद्दों (विशेषकर नागरिक अधिकारों व राज्य के दमन पर) पर स्थापित किये गये हमारे दृष्टिकोणों का भी काफी प्रभाव लोगों पर पड़ा हें हमारा ऐसा प्रभाव कोई नई प्रक्रिया शुरू करने से नहीं बढ़ा है बल्कि शायद इसलिये बढ़ा है क्योंकि हमने कुछ खास मुद्दों जैसे–मानव जाति के विभिन्न सांस्कृतिक व पर्यावरणीय अस्तित्व और साम्प्रदायिकता के विभिन्न आयामों पर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। अतः हमें फिर से अपनी उन मुख्य गतिविधियों को शुरू करना होगा जिसके द्वारा हमें आज तक अपनी एक विशेष पहचान बनाये रखने में मदद मिली थी, यह पहचान फिर से संवाद शुरू करके बनेगी या तब बनेगी जब आज के प्रासंगिक सामाजिक मुद्दों पर शोध रपटें विभिन्न क्षेत्रों में फैल पायेगी। कुछ समस्याओं व विवादों के बावजूद हम बुलेटिन निकालने का काम काफी सफल तरीके से कर पा रहे हैं। मगर हम अभी तक लगातार संवाद आयोजित करने या सघन क्षेत्रों के दौरे का काम सफल तरीके से नहीं कर पा रहे हें। ऐसा नहीं है कि हम बिल्कुल असफल रहे हैं। पिछले एक वर्ष में हम हैदराबाद में साम्प्रदायिकता, बम्बई में गैर–दलीय राजनैतिक समूहों पर हो रहे हमलों, सिंगरौली व अहमदाबाद में मानव जीवन के अस्तित्वहीनता, दिल्ली में लोकायन के कार्य क्षेत्रों पर संपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करने आदि पर एक–एक ंवाद आयोजित कर चुके हैं। इसके अलावा भोपाल गैस त्रासदी व दिल्ली के स्थानीय पर्यावरण की समस्याओं पर भी विगत छः माह से लोकायन सक्रिय समूहों/संगठनों के समन्वय हेतु कार्यरत है। मगर हमें इससे भी ज्यादा सक्रिय होना है, खासकर देश के उत्तर व दक्षिणी भागों सहित अन्य उपेक्षित जगहों पर भी अपनी पहुंच बढ़ानी है।

इन विषयों और आपके रुचि वाले अन्य मुद्दों पर भी अपनी तरफ से आप हमें सुझाव दें। यह हम सब लोग मानते ही हैं कि लोकायन की प्रासंगिकता है और इसके सामने एक बहुत बड़ी चुनौती भी है। इस चुनौती का सामना करने हेतु इस प्रक्रिया को व्यापक स्वरूप प्रदान करने क`लिये हम सभी को एक साथ प्रयास करना होगा ताकि सामाजिक ज्ञान को राजनैतिक सक्रियता के साथ जोड़कर मूर्त रूप दिया जा सके। जो हम लोकायन के माध्यम से बार–बार कहते रहे हैं।

कृपया पत्र लिखें। इस बीच हम लोकायन के सक्रिय कर्मियों की एक बड़ी बैठक करना चाहते हैं, जिसकी सूचना शीघ्र ही आपको प्राप्त होगी।

आपका

रजनी कोठारी

द्वारा – लोकायन

13, अलीपुर रोड,

दिल्ली–110054

(मूल अंग्रेजी से राणा कौशल द्वारा अनुवादित)

शब्द संख्या –1,120

चिट्ठी पत्री

बोध गया भूमि संघर्ष

यह भी इतिहास है

(विगत लोकायन बुलेटिन खण्ड–3, अंग–1 में आपने 'कार्यकर्त्ताओं को संवेदनाएं व स्नेह चाहिए' –– संघर्ष वाहिनी कार्यकर्त्ता प्रभात से बातचीत पढ़ी होगी, आजकल इम्फाल (मणिपुर) में सक्रिय टिकेन्द्र ने इस बातचीत को पढ़कर इसमें कुछ ऐतिहासिक तथ्य जोड़े हैं, जिसे हम प्रकाशित कर रहे हैं – सं.)

बोध गया भूमि संघर्ष की शुरूआत लोकनायक जयप्रकाश नारायण के आशीर्वाद से इमर्जेन्सी से पहले ही, अर्थात् 1974 के बिहार–आन्दोलन के दौरान जगन्नाथनजी द्वारा की गयी थी, न कि दिसम्बर 1977 से। वाहिनी ने बाद में इस भूमि संघर्ष को, दिसम्बर 1977 को अपने हाथ में लिया हो तो अलग बात है। बोध गया भूमि समस्या को बिहार–आन्दोलन का एक मुद्दा मानकर मेरे पिताजी जगन्नाथन जी ने स्थानीय सिताराम मुखिया, प्रदीप हरिजन नेता धनुमाँझी शिबुभाई, डा. विनयन (कानपुर), जगदीश भाई (इलाहाबाद), श्री हेमभाई (गौहाटी), श्री टिकेन्द्र (इम्फाल), श्रीमती सुमनबाई अग्रवाल (वर्धा), कुमारी इन्दु (पटना), कुमारी बिन्दु (पटना), श्रीमती माया दीदी (चम्पारण) तथा माताजी कृष्णाम्मा (मदुराई) के सहयोग से बाराचट्टी (मोहनपुर ब्लाक) में हरिजन–भूईयाँ लोगों को संगठित करने का प्रयास शुरू किया गया था।

बोध गया मठ के 10,000 एकड़ भूमि को भूमिहीनों के बीच बांटने हेतु 25 जून 1975 को महन्त से हेमभाई, टिकेन्द्र, बाबूलाल भाई, नन्द कुमार, श्रीमती सुमन ताई आदि जे.पी. की ओर से मिले थे और इन्होंने 25 जून से ही पाँ दिनों तक की भूख हड़ताल की थी।

इमर्जेन्सी लागू हो जाने के बाद 9 जुलाई 1975 को प्रथम बार भूमि बांटों, अमर्जेन्सी वापस लो, जे.पी. को रिहा करने की माँग को लेकर बोध गया में एक विशाल जुलूस गया था और कई हरिजन–भूइयां लोगों ने नन्दकुमार व टिकेन्द्र के साथ–साथ अपनी गिरफ्तारी दी थी तथा गया सेन्ट्रल जेल में 18 माह तक डी.आई. आर के बन्द रहे थे।

टिकेन्द्र, इम्फाल
(मणिपुर)

2. संवाद में रुचि

लोकायन जो काम कर रहा है, उसका महत्त्व है। मैं इसको पढ़ता रहा हूं। कुछ लिखना भी चाहा था।

एक बात मैं आपको बता देना चाहता हूं। मैं किसी संगठन से सक्रिय रूप से जुड़ा नहीं हूँ। जयप्रकाश विचार परिषद् की शुरुआत मैंने न केवल जे.पी. के विचारों का, बल्कि जे.पी. पर जिन विचारों का प्रभाव पड़ा था, उनकी चिन्तनधारा का अध्ययन करने–कराने की दृष्टि से की थी। बीच–बीच में इसकी तरफ से गोष्ठियां वगैरह होती रही हैं। इससे ज्यादा कुछ करना संभव नहीं हुआ है। यह परिषद कोई संगठन या संस्था न होकर एक मंच मात्र है। इसका नाम परिषद इस प्रकार के अन्य बहुत सारे विचार–मंचों से भिन्नता प्रकट करने के लिए है। संपूर्ण क्रांति मंच में भी परिषद शामिल है, इस सिलसिले में यह भी कह देना आवश्यक मानता हूं कि मैं कोई सक्रियकर्मी भी अब नहीं रहा हूं। (एक्टिविस्ट शब्द का यह अनुवाद मुझे जंचा है) परन्तु सक्रियकर्मियों से जुड़ा अवश्य रहा हूं। इसलिए शायद आपका लोकायन जिन समूहों और व्यक्तियों या नागरिकों के बीच संवाद चलाने का माध्यम है, उनमें मेरा शुमार नहीं हो सकता। फिर भी इस संवाद में मेरी गहरी रुचि है, इसलिए मैं लोकायन बुलेटिन का ग्राहक या सहयोगी पाठक बनूंगा और समय–समय पर उसके लिए लिखने का भी प्रयास करूंगा।

सच्चिदानन्द,
बी–4 कंकड़बाग हाउसिंग कालोनी, लोहिया नगर, पटना–20 (बिहार)

3. 'वकालत और हमारी नैतिक–आध्यात्मिक चेतना'

लगातार के आग्रह से मुझ जैसे क्रियाहीन से व्यक्ति भी लोकायन ने पत्र लिखवा ही लिया, यह बात मेरे मित्रों को भी बहुत आश्चर्यजनक लगेगी।

आपके शुभ कार्य में लगे होने का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं। जानकारी के स्तर पर ही लोकायन से जुड़ा रहा पाया तो भी शायद मुझे मेरी चेतना बनाए रखने में सफलता मिलेगी, नहीं तो मेरा व्यवसाय नैतिक–आध्यात्मिक चेतना की आहुति मांग कर ही बढ़ता है।

आलोक कुमार,
अधिवक्ता, 501 लॉयर्स चेम्बर्स, वेस्टर्न विंग, तीस हजारी न्यायालय, दिल्ली

4. 'अच्छे काम का सबूत'

आप पैसे की तंगी में हैं, तो यह इस बात का सबूत है कि आप अच्छा काम कर रहे हैं।

आचार्य राममूर्ति,
श्रमभारती खादीग्राम, पो. खादीग्राम, मुंगेर 811313

5. 'चिंतन प्रक्रिया को गति'

लोकायन के संदर्भ में मात्र इतना ही कहना चाहूंगा कि लोकायन बुलेटिन समाज सेवा में लगे समूहों और लोगों के लिए, उनकी चिन्तन प्रक्रिया को गति देने के लिए निःसंदेह महत्वपूर्ण है। प्रकाशित बुलेटिन का विशेषांक एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

हम भी पश्चिमी कोयला प्रक्षेत्र गेवरा परियोजना तथा हंसदेव बांगो सिंचाई परियोजना में अध्ययन एवं विस्थापित लोगों के न्याय के लिए संघर्षरत हैं।

विजय तिवारी,
द्वारा अनुराधा फोटो स्टूडियो, विलासपुर (म.प्र.)

6. 'भूमिका की तलाश'

लोकायन बुलेटिन में समाज से जुड़ी बहुत ही उपयोगी सामग्री पढ़ने को मिली। जब कभी मौका मिलेगा तो खेसरी दाल पर आगे जो करना है उस पर लिखूँगा। उसके उन्मूलन के लिए मेरा प्रयास जारी है। उदासीन बड़े कर्मचारी और बड़े किसान इस दिशा में कुछ नहीं करना चाहते हैं।

माधव प्रसाद द्विवेदी,
सेवाग्राम, वर्धा (महाराष्ट्र)

7. 'लोकायन बुलेटिन की भाषा सरल हो'

लोकायन को सरल भाषा और सुंदर छपाई वाला संवाद का ऐसा मंच बनायें कि हर वर्ग का पाठक इसे प्ढ़ सके। ध्यान रहे कि गैर–दलीय समाज रचना के संगठनों द्वारा किये जा रहे समाज परिवर्तन के प्रयासों पर समय–समय पर जानकारी दी जाये। लोकायन समाज परिवर्तन की दिशा में, सही उद्देश्य लेकर ही, ज्वलन्त समस्याओं की गहराई में उतरने का प्रयास करेगा, ऐसी मेरी आशा है।

इतवारी लाल,
बघोली, बैहर, बालाघाट (म.प्र.)

9. आपके बुलेटिन से हमारे काम की दिशा में जो सहयोग मिल रहा है उसके लिए आभरी हैं।

शांति प्रकाश तिर्की,
जशपुर समाज सेवा समिति, भागलपुर, पो. जशपुर नगर, रायगढ़(मध्य प्रदेश)

10. 'लोकायन का लक्ष्य ऐसा हो'

लोकायन बुलेटिन के लोकनीति सम्बन्धी मुहावरे, लोक नीति को जीवित रखने का एक सराहनीय प्रयास है। राजनैतिक कर्मियों की भाषा में इन मुहावरों का प्रयोग तभी हो पायेगा जब हम लोग भी समाज को लोकायन के दृष्टिकोण से देखने तथा उस पर अमल करने का प्रयास करेंगे। लोकायन अगर जन संगठन निर्माण और उसके कर्म के माध्यम से सवाल उठा सके तभी इस तरह के प्रयास लोक प्रभाव का दायरा बना पायेंगे। अन्यथा मुश्किल ही नहीं असम्भव भी है।

सुधीन्द्र भदौरिया ई–83, साकेत, नई दिल्ली–110017

एमनेस्टी इंटरनेशनल

घाना नेता मेजर एसिएडु टेकु को रिहा करो

एमनेस्टी इंटरनेशनल एक स्वतंत्र विश्वव्यापी आंदोलन है, जो अन्तःकरण के कैदियों की रिहाई, सभी राजनीतिक कैदियों के न्यायपूर्ण व शीघ्र सुनवाई तथा मृत्यु दण्ड व यातना को समाप्त किए जाने के लिए हाम करता है। अगस्त 1984 में संगठन के अंतर्राष्ट्रीय सचिवालय में रजिस्ट्रेशन के बाद से ग्रुप इंडिया–14, जो कि पटना और बिहार में एमनेस्टी इंटरनेशनल का एकमात्र ग्रुप है, अफ्रीकी देश घाना के मेजर एसिएडु टेकु के लिए काम करती रही है।

घाना के ग्यापेक्रोम क्षेत्र के परम्परागत मुखिया मेजर एसिएडु टेकु को 23 मार्च 1984 को ग्योपेक्रोम में नजरबन्द कर लिया गया था। उन पर अभियोग लगाए गये आरोपों की जानकारी एमनेस्टी को नहीं है। न तो उन्हें नजरबन्द किए जाने का कोई कानूनी आधार ही मालूम है, और न ही उन पर मुकदमा चलाया गया है। ग्रुप इंडिया–14 मेजर एसिएडु की नजरबंदी का सही कारण जानने का प्रयत्न करती रही है। इसके अलावा, वह सितम्बर 1984 से ही घाना के अधिकारियों से यह अपील करती रही है कि या तो मेजर एसिएडु पर अंतर्राष्ट्रीय मानदण्डों के आधार पर शीघ्र मुकदमा चलाया जाए या उन्हें रिहा किया जाए।

सबसे पहले घाना के राष्ट्रीय प्रतिरक्षा परिषद के अध्यक्ष फ्लाइट लेफ्टिनेन्ट जे.जे. रावलिंग्स को पत्र लिखकर अपील की गई कि मेजर एसिएडु टेकु पर शीघ्र अंतर्राष्ट्रीय मानदण्डों के आधार पर मुकदमा चलाया जाए। इस पत्र की एक प्रति दिल्ली में घाना के उच्चायुक्त को भी भेजी गई। इसके अलावा, घाना के मुख्य न्यायाधीश एफ.के. अपालू और 'क्रिश्चन काउंसिल ऑफ घाना' को भी मेजर एसिएडु के लिए एमनेस्टी की चिंता दर्शाते हुए पत्र लिखे गए, जिनमें उन्हें यह भी सूचित किया गया कि ग्रुप इंडिया–14 की ओर से घाना के अधिकारियों को इस बारे में पत्र लिखे जा रहे हैं। इसके बाद में घाना के न्याय–सचिव और विदेश सचिव सहित घाना के छः अधिकारियों को कम से कम तीन–तीन बार पत्र लिखे गए हैं। कोई उत्तर नहीं मिलने पर दिल्ली में घाना के उच्च–आयुक्त से भी मदद मांगी गई। आवेदन भेजे गए, सीधे मेजर एसिएडु से पत्र द्वारा सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया गया, लेकिन अब तक सिर्फ घाना के मुख्य न्यायाधीश के कार्यालय से एक उत्तर मिल सका है, जिसके अनुसार घाना के मुख्य न्यायाधीश को मेजर एसिएडु की नजरबंदी के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

मेजर एसिएडु को एक वर्ष से भी अधिक समय से बिना अभियोग लगाए नजरबनद रखा गया है। यह संयुक्त राष्ट्र संघ मानव–अधिकार घोषणा–पत्र की धारा 9 का उल्लंघन है – जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से नजरबन्द या गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। मेजर एसिएडु टेकु पर शीघ्र अंतर्राष्ट्रीय मानदण्डों के आधार पर मुकदमा चलाने, या उन्हें रिहा करने की अपील करते हुए दिल्ली में घाना के उच्चायुक्त को नीचे दिए गए पते पर पत्र लिखा जा सकता है : हाई कमीशन ऑफ घाना, ए–42 वसन्त मार्ग, वसन्त विहार, नई दिल्ली–110057

रमेन्द्र
प्रेस कार्यालय
एनेस्टी इन्टरनेशल
ग्रुप–भारत 14
216–ए. श्रीकृष्णापुरी
पटना–800001 (भारत)

भोपाल गैस त्रासदी विरोधी समिति–दिल्ली
परिचय

यह समिति दिल्ली आधारित कई संगठनों और व्यक्तियों का मंच है, जो गैस पीड़ितों को राहत, पुनर्वास व न्याय दिलाने की प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिए बनाया गया है।

मई और जून माह में कई अनौपचारिक बैठकों के बाद विगत 5 जुलाई 1985 को औपचारिक रूप से भोपाल गैस त्रासदी विरोधी समिति दिल्ली बनाई गई। इस समिति ने दिल्ली में अब तक कई आम सभाओं, गोष्ठियों और मध्यप्रदेश भवन पर धरने का आयोजन किया है।

समिति ने निशान्त नाट्य मंच, पी.यू.डी.आर., पी.यू.सी.एल., जनतन्त्र समाज, सहेली, सोसायटी फार पार्टिसिपेटरी रिसर्च इन एशिया, लोकायन, इंडियन पीपुल्स फ्रंट, सेन्टर फार सायंस एण्ड एन्वायरमेंट, अंकुर, संकल्प, विहानी नाट्य मंच, सी. पी.डी.आर.एस., अखिल भारतीय लोकतांत्रिक छात्र संगठन, वोयेलन्ट्री हेल्थ एसोसिएशन आफ इण्डिया, दिल्ली कोर्डिनेशन कमिटि आफ एम्प्लायस एण्ड वर्कर्स, इण्डियन फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियन, कल्पवृक्ष, संयुक्त ट्रांसपोर्ट वर्कर्स यूनियन, सर्वहारा संघर्ष समिति, हिन्दुस्तानी आन्दोलन, विद्या ज्योति, इण्डियन लायर्स फार सोशल एक्शन लिटिगेशन फार भोपाल विकटिम्स, दिल्ली जहरीली गैस काण्ड विरोधी मोर्चा शामिल हैं। समिति के कार्यक्रमों में सहयोग देने या शामिल होने की इच्छा रखने वाले दूसरे संगठनों व व्यक्तियों का भी स्वागत है।

भोपाल गैस त्रासदी विरोधी समिति–दिल्ली

(इस समिति के तीन सदस्यीय टोली द्वारा भोपाल जाकर की गई जांच–पड़ताल की रपट अगले पृष्ठ पर देखें – सं.)

भोपाल त्रासदी : अभी चौकसी जरुरी है !

[भोपाल गैस त्रासदी विरोधी समिति–दिल्ली की ओर से तीन सदस्यीय टोली (शिव विश्वनाथन, राणा कौशल, आशीष कोटारी) ने भोपाल जाकर विगत 17–18 जुलाई 1985 को गैस पीड़ितों और कार्यकर्त्ताओं पर होने वाले दमन के साथ–साथ प्रशासकीय, स्वास्थ्य व वैज्ञानिक प्रतिष्ठानों के बारे में जाँच–पड़ताल की।

अपनी खोज के दौरान टोली विभिन्न गैस पीड़ित बस्तियों में गई तथा कई सक्रिय कार्यकत्ताओं, डाक्टरों व वकीलों से मिली।

समिति की यह प्रारम्भिक रपट हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों में प्रकाशित की गई है। इसकी सहयोग राशि 2 रुप्ये रखी गयी है। यह पुस्तिका लोकायन में उपलब्ध है। प्रस्तुत रपट इसी पुस्तिका पर आधारित है। सं.]

I

घटना क्रम

भोपाल के विभिन्न इलाकों से 24 जून, 1985 की रात को लगभग 40 लोगों को उनके घरों से पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। इसमें गैस पीड़ितों के बीच स्वतन्त्र रूप से चिकित्सा सुविधा देने वाले 6 चिकित्सक, दो प्रमुख संगठनों, भोपाल जहरीली गैस गाण्ड संघर्ष मोर्चा व नागरिक राहत व पुनर्वास समिति के बहुत से कार्यकर्त्ता और गैस पीड़ित बस्तियों के विभिन्न व्यक्ति शामिल थे। गिरफ्तारी का कारण प्रदर्शन के लिए एकत्र होने वाले गैस पीड़ितों को रोकना था। यह गैस पीड़ितों के तात्कालिक मुआवजे व राहत की मांगों के लिए बढ़ते हुए संघर्ष को नाकामयाब करने हेतु कार्यवाही थी।

इस अभियान के लिए अपनाये गये तरीके से सरकार की मंशा स्पष्ट हो जाती है। गैस पीड़ितों के आन्दोलन से प्रत्यक्ष रिश्ता न रखने वाले स्वयं सेवी चिकित्सकों को जनता को उत्तेजित करने के झूठे आरोप लगाकर गिरफ्तार किया गया। आन्दोलन से जुड़े बहुत से बस्ती निवासिों, जैसे राजेन्द्र नगर के देवचन्द्र को रात के 1.30 बजे बिना किसी वारन्ट या लिखित आदेश के गिरफ्तार कर लिया गया। शक्ति नगर की लक्ष्मीबाई को उसके दूध पीते बच्चे से छुड़वाकर घर से जबर्दस्ती घसीटकर गिरफ्तार किया गया। इसी तरह संघर्ष मोर्चे व पुनर्वास समिति के भी कई कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार किया। साधना कार्णिक व ज्योतिका वीर्दी को पुरुष सिपाहियों द्वारा पुलिस थाने में ले जाया गया। यह गिरफ्तारी उन निर्देशक नियमों का उल्घन था जिसके तहत् सिर्फ कोई महिला पुलिस ही किसी महिला को रात में गिरफ्तार कर सकती है। सभी गिरफ्तार महिलाओं को पुलिस कन्ट्रोल रूम और पुरुषों को विभिन्न पुलिस थानों में ले जाया गया और दूसरे दिन तक गैर–कानूनी रूप से कैद में रखा गया, फिर कुछ लोगों को छोड़ दिया गया और कुछ को अभियोग पत्र देकर जेल भेज दिया गया।

25 जून भोपाल जहरीली गैस काण्ड संघर्ष मोर्चा द्वारा मध्य प्रदेश सचिवालय (बल्लभ भवन) के समक्ष अन्य मांगों के अलावा निम्नलिखित प्रमुख मांगों के लिए प्रदर्शन का दिन था।

.....500 रुपये प्रति माह से कम आमदनी वाली शर्त हटाकर सरकार घोषित 1,500 रुपये की तात्कालिक राहत सभी गैस पीड़ितों को दे। यह इसलिए जरूरी है क्योंकि पीड़ितों ने अभी चिकित्सा के अलावा तथाकथित 'आस्था अभियान' के दौरान भोपाल से भागते समय काफी खर्च किया था।

.....सायनायड जहर को काटने के लिए 'भारतीय चिकित्सा शोध संस्थान' (आई.सी.एम.आर.) द्वारा सुझायी गयी सोडियम थायोसल्फेट की सूई बड़े व्यापक पैमाने पर गैस पीड़ितों को लगाने और सरकार द्वारा इसके वितरण पर लगायी गयी रोक को निरस्त करना।

.....राहत व मुआवजे के लिए जिम्मेवार सरकारी अफसरों के भ्रष्टाचार व मनमानी की जांच कराना।

यह भी महत्व की बात है कि इन मांगों को जनवरी 1985 में मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह, बाद में मुख्यमंत्री मोतीलाल वोहरा और सभी जिम्मेवार सरकारी अफसरों के समक्ष पेश किया गया था। इन पर कभी विचार नहीं किया गया। इसीलिए स्वयंसेवी कार्यकर्त्ताओं व गैस पीड़ित ने 25 जून 1985 को एक बार फिर मध्य प्रदेश सचिवालय का घेराव करने का प्रयास किया।

कई समाचार पत्रों और हमारे साक्षात्कारों से हमलोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्रदर्शनकारियों पर किया गया लाठी चार्ज निर्मम था, बच्चों व महिलाओं तक को बुरी तरह पीटा गया। कई लोगों के हाथ व पैर की हड्डियां और दांत टूट गये। छोला नाका की सियावाई ने हमें अपना चेहरा दिखाया। घटना के 20 दिन बाद भी उसके चेहरे पर घाव के निशान थे। बहुत–सी महिलाओं को उस वक्त पीटा गया जब वे भागते हुए अपनी चप्पलें उठा रही थीं। छोला मन्दिर की लक्ष्मीबाई को कन्धों व घुटनों पर मारा गया, जिससे वह चार दिन तक अस्पताल में भर्ती रहीं। प्रेस संवाददाताओं द्वारा ली गई तस्वीरों से साफ पता चलता है कि पुलिस वालों ने प्रदर्शनकारियों को पीछे से खदेड़ते हुए लाठियों से मारा है। कुछ बस्ती निवासियों के अनुसार बच्चे भी घायल हुए हैं।

गिरफ्तार लोगों को 26 जून दोपहर से पहले थानों तथा फिर बाद में जेल ले जाया गया। 24 जून की रात को पकड़ी गयी 5 महिला कार्यकर्त्ताओं सहित 31 कार्यकर्त्ताओं व गैस पीड़ितों को साथ ही जेल भेजा गया।

लगातार उत्पीड़न का एक तरीका गंभीर व झूठे अभियोग पत्र देना भी है। गैस पीड़ितों का इलाज न करने के पीछे भी सरकार की मंशा जाहिर होती है। महिलाओं सहित गिरफ्तार कई लोगों को जेल ले जाने से पहले थाने में पीटा गया। कई गवाहों के अनुसार महिलाओं को भद्दी गालियां व धमकियां दी गई। जहांगीराबाद थाने में पुलिस अधीक्षक ने बस्ती की कई महिलाओं को थप्पड़ मारा और मिट्टी का तेल डालकर आग लगा देने की धमकी दी। थाने और जेल में गिरफ्तार लोगों को भोजन नहीं दिया गया। मान कुमारी नामक गैस पीड़ित व लाठी चार्ज से घायल महिला दो बार जेल से अस्पताल में भर्ती हुई पर न तो उसे भोजन दिया गया और न ही कोई दवा दी गई। लक्ष्मीबाई 24 जून को गिरफ्तार हुई पर उसके दूध पीते बच्चे को तीन दिन तक उसे नहीं दिया गया। बच्चा उसे तभी दिया गया जब उसने अन्य गिरफ्तार कार्यकर्त्ताओं के साथ भूख हड़ताल की धमकी दी। इसी के साथ गिरफ्तार लोगों के परिवार के लोगों व दोस्तों को भी पुलिस द्वारा बस्तियों में धमकाया गया।

मोर्चे के कागजात फोटो स्टेट करने वाले दुकानदार को कहा गया है कि वे उसकी दो प्रतिलिपियां बनाए और एक प्रतिलिपि स्थानीय गुप्तचर विभाग को सौंप दे। मोर्चा कार्यालय के सामने सादे वेश में गुप्तचर विभाग के दो–तीन लोग हर समय खड़े रहते हैं। यहां हमारी टीम के लोगों का भी पीछा किया गया।

सरकार की मंशा को जाहिर करने वाली एक कार्यवाही कार्यकर्त्ताओं व स्वतंत्र डाक्टरों द्वारा यूनियन कार्बाइड के प्रांगण में चलाए जाने वाले 'जन स्वास्थ्य केन्द्र' को बन्द करना था। इसी केन्द्र में सायनाइड के असर को खत्म करने के लिए सोडियम थायोसल्फेट की सूइयां दी जा रही थीं। 24 जून की रात को ज्योतिका विर्दी व सतीनाथ सारंगी को इस केन्द्र से गिरफ्तार कर लाया गया। कुछ दिनों बाद जब डाक्टरों ने जाकर स्वास्थ्य केन्द्र को फिर से शुरू करना चाहा तो वहां लगे तालों को खुलवाने का हर प्रयास बेकार सिद्ध हुआ। यूनियन कार्बाइड के प्रबन्धकों ने कहा कि सी.बी.आई. ने ताला लगाया है और सी.बी.अई. वाले यूनियन कार्बाइड पर यह आरोप लगा रहे थे। डाक्टरों ने अनाधिकार प्रवेश के इलजाम से बचने के लिए ताला नहीं तोड़ा। 10 दिनों तक डाक्टरों को जब्द किए विभिन्न उपकरण, कागजात व रजिस्टर नहीं दिये गए। शायद इसलिए कि कहीं दूसरी जगह वे फिर से यह स्वास्थ्य केन्द्र शुरू न कर सकें। जब उन्होंने इस स्वास्थ्य केन्द्र को चलाने के लिए वैकल्पिक व्यवस्था कर ली तो सीडियम थायोसल्फेट की सूइयां देने से ही इन्कार कर दिया गया। जब जब्त सामग्री लौटाई गई तो उसमें से मरीजों के नाम पतों वाले दो रजिस्टर, महत्वपूर्ण मेडिकल रिकार्ड और कार्यकर्त्ताओं की सूची गायब थी। वे अभी तक नहीं लौटाए गए हैं। पुलिस दमन के कारण स्थानीय डाक्टर दोबारा शुरू किये गये स्वास्थ्य केन्द्र में मदद करने से डर रहे हैं।

इस पूरे घटना चक्र में कई अपराधिक मुकदमों के अभियोगी और इंका समर्थक मशहूर गुण्डों की भूमिका उल्लेखनीय है। इनका पूरे क्षेत्र में आतंक है। 25 जून की घटना के पहले भी ये बस्ती कार्यकर्त्ताओं को धमकाते, मोर्चे के बारे में गलत अफवाह फैलाने और राहत के कार्यों में बाधा पहुंचाने का काम करते रहे हैं। 24 जून की रात को संघर्ष मोर्चे का सी.आई.ए. से सम्बन्ध है, के आरोप वाले काफी पोस्टर लेकर उन्होंने यूनियन कार्बाइड की दीवारों पर चिपकाए। बस्ती वालों को ये पोस्टर अगले दिन प्रदर्शन में भाग न लेने की धमकी देते हुए बांटे गए। यही लोग 25 जून को बस्ती वालों को बल्लभ भवन की ओर जाते वक्त रोकते और मुख्य सचिव को मुआवजे के लिए दिए जाने वाली आवेदन पर्चियों को छीनकर फाड़ते हुए देखे गए। 24 जून की रात को यही लोग मुन्नालाल यादव के घर जाकर 5000 रुपये की मांग कर रहे थे। मुन्नालाल को अपने परिवार के मृतकों के मुआवजे के रूप में 20,000 रुपये मिले थे। आश्चर्य की बात है कि कुछ कार्यकर्त्ताओं को पुलिस द्वारा दिये गये कारण बताओ नोटिसों में भी गवाह के रूप में इन गुंडों के नाम हैं। 29 व 30 जून को सेशन कोर्ट से रिहा होने के बाद पहली पेशी के समय मजहर खान व बाबू खान नाम के ऐसे दो गवाहों ने खुलेआम नागरिक राहत व पुनर्वास समिति के कार्यकर्त्ताओं लियाकत और अयूब को गालियां दी। लियाकत व अयूब का मुकदमा देखने वाले अदालत में उपस्थित वकील शहनवाज को भी मजहर खां ने धमकियां दी। विश्वसनीय लोगों से यह भी सुनने में आया कि ये लोग अपने सगे–सम्बन्धियों के नाम पर फर्जी मुआवजे लेकर काफी पैसा बना रहे हैं। गैस पीड़ितों के कई बार शिकायत करने के बावजूद किसी न किसी तरह के राजनैतिक संरक्षण के कारण कोई कारवाई नहीं होती। इसका अंदाज हमें म.प्र. के स्वास्थ्य मंत्री के साथ खिचवाए गए इनके फोटो से होता है। 21 जून को जब म.प्र. के मुख्यमंी गैस पीड़ितों के लिए 100 बिस्तरों वाले अस्पताल का शिलान्यास करने गए तो ये उस अवसर पर अगली पंक्ति में बैठे पाये गये। इससे भी राजनैतिक संरक्षण की बात को बल मिलता है।

गैस पीड़ितों के आंदोलन को दबाने के लिए सरकार ने सार्वजनिक रूप से स्वयंसेवी संगठनों की निंदा करना–जनता के बीच इनके बारे में भय व भ्रम फैलाना शुरू किया है। मोर्चे के कार्यकर्त्ताओं के अनुसार यह बात सिद्ध करने के लिए काफी प्रमाण मौजूद हैं कि सुदीप बनर्जी–निदेशक, सूचना व प्रसारण विभाग, म.प्र. ने खुद इस तरह की बेबुनियाद खबरें फैलाई हैं, उन्होंने यह 'नेक' काम जनवरी 1985 में किया। सरकारी प्रेस विज्ञप्ति के तथ्यों को बिना जांच किए प्रकाशित करने वाले पत्रकारों को बताया गया कि मोर्चा के यूनियन कार्बाइड से धनिष्ट सम्बन्ध हैं। कुछ दिनों बाद यह अफवाह भी फैलाई गई कि संघर्ष मोर्चे को किसी ब्रितानवी मजदूर संघ से डेढ़ लाख रुपये प्राप्त हुए हैं।

इस बात के भी कई चश्मदीद गवाह हैं कि जनता को गुमराह करने हेतु 12 जनवरी, 1985 की रेल रोको आंदोलन के रद्द होने की प्रेस विज्ञप्ति श्री बनर्जी के दफ्तर में टाईप की गई थी। तात्कालिक पुलिस अधीक्षक स्वराज पुरी खुद अपने हाथ से इस प्रेस विज्ञप्ति को लेकर पी.टी.आई. के दफ्तर गए थे। बनर्जी लगातार यह अफवाह फैला रहे हैं कि संघर्ष मोर्चे की सारी मदद भोपाल के बाहर से मिल रही है और उनके पास जो भी चिकित्सा व वैज्ञानिक जानकारियां उपलब्ध हो रही हैं, वह सब यूनियन कार्बाइड को भेजी जा रही हैं। 24 व 25 जून की घटना के बाद भी सरकारी कुप्रचार जारी है। म.प्र. के राज्यपाल ने संघर्ष मोर्चे के कार्यकर्त्ताओं को पेशेवर आंदोलनकारी व निहित स्वार्थी कहा है। म.प्र. के मुख्यमंत्री ने इन्हें भोपाल के नागरिकों में उत्तेजना फैलाने वाले बाहरी तत्व कहकर बदनाम किया और सी.आई.ए. व यूनियन कार्बाइड के एजेन्ट के नाम से कई पोस्टर लगाए गए, इसी तरह उन्हें नक्लसवादी भी कहा जा रहा है। कभी–कभी प्रचार बड़े हास्यास्पद होते हैं। 27 जुलाई, 1985 की मोर्चा कार्यकर्त्ता आलोक प्रताप सिंह को गिरफ्तार किया गया तो उनके घर मे पड़े पुलिस छापे में कुछ लेनिन लिखित पुस्तकें और शहीद भगतसिंह व खुदीराम बोस के चित्र अंकित कई बिल्ले पाये गए। अगले दिन पुलिस ने बयान दिया कि मोर्चे के कार्यकर्त्ता के यहां से कुछ नक्सलवादी साहित्य पाया गया है। अभी बांटे गए एक पर्चे में कहा गया है कि डा. सद्गोपाल की अमरीकी पत्नी मीरा जो अब भारतीय नागरिक हैं, का वारेन एण्डरसन से सीधा संबंध है। उपरोक्त चर्चित 'अपराधी' तत्व ऐसे पर्चे बांटते देखे गए।

ऐसे कई अन्य तरीकों से सरकार भोपाल की जनता को दिग्भ्रमित कर रही है। और कुछ हद तक वह मुख्यतः भोपाल के मध्यम वर्ग को गुमराह करने में सफल भी रही है। भोपाल की ज्यादातर जनता गैस काण्ड व बाद के घटना क्रम से अनभिज्ञ है तथा सरकारी प्रचार के प्रभाव में वे गैस पीड़ितों की सहायता के काम में बहुत उत्साह से नहीं जुड़े हैं। यहां भी बाहरी तत्व होने के सवाल उठाए गए, जैसे भोपाल से बाहर के किसी भारतीय नागरिक को भोपाल के गैस पीड़ितों के लिए संघर्ष करने का अधिकार न हो। सरकार द्वारा देश के अन्य हिस्सों के लोगों को अप्रत्यक्षतः विदेशी सिद्ध करने हेतु ? इस मुद्दे को विदेशी धन व सी. आई.ए. से जोड़ा जा रहा है। यह आश्चर्य की बात है कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक होने का दावा करने वाली सरकार इस तरह का प्रचार क्यों कर रही है? शायद यह उतना आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि नागरिक राहत व पुनर्वास

समिति के तपन बोस के अनुसार जब भी किसी पिछड़े क्षेत्र में कोई गरीब व शोषित लोगों को संगठित करने की कोशिश करता है तो उसे बाहरी या नक्सलवादी कहा जाता है।

शब्द – 2,168

II

पर्याप्त राहत : एक थोथा प्रचार

24 व 25 जुलाई की घटना को भोपाल गैस त्रासदी व उसके बाद के असर की पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए। इस त्रासदी ने हजारों लोगों (अनगिनत) को मारा है तथा दो लाख लोगों पर शारीरिक व मानसिक रूप से प्रभाव डाला है। लोकतांत्रिक तरीके से चुनी गई सरकार से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह कुछ ठोस कदम उठायेगी। मगर लगातार घटती हुई घटनायें – बढ़ते हुए भ्रष्टाचार, लापरवाही तथा जुल्म की कहानी व्यवस्था का दूसरा पहलू ही उजागर करती है। मरने वालों की संख्या कम करके आंकी जा रही है। जिन लोगों से हमने बात की उनका मानना है कि एक कब्र में लाशें एक साथ गाड़ी में गई और भोपाल से बाहर अनजान जगहों पर लाशों का ढेर लगा दिया गया। प्राथमिक राहत के हकदार गैस पीड़ितों की गणना भी ठीक ढंग से नहीं की गई, शारीरिक श्रम न कर पाने वाले हजारों लोगों के समुचित रोजगार के लिए कोई उपाय नहीं खोजे गये। मार्च माह में मेडिको फ्रेन्ड्स सर्किल द्वारा किये गए सर्वेक्षण के अनुसार 65% गैस पीड़ित काम पर लौटने में अक्षम हो गये हैं। पुनर्वास के नाम पर विधवाओं को मात्र 60 रु. की छोटी राशि प्रदान की गई है। इसके बावजूद सरकार काफी मात्रा में राहत देने की सार्वजनिक घोषणा कर रही है। सरकारी दावों की जांच करने हेतु बस्ती वालों, स्वतंत्र डाक्टरों व वकीलों तथा नागरिकों से बात करने पर यह साफ हुआ कि राहत का काम बिल्कुल अपर्याप्त है। शायद ज्यादा खतरनाक बात यह है कि भारतीय स्वास्थ्य शोध संस्थान की अनुशंसा के बावजूद सायनाइड के प्रभाव को काटने वाली सोडियम थायोसल्फेट के इन्जेक्शनों की आपूर्ति बन्द कर दी गई। स्थिति को बदतर बनाने के लिए स्वयं सेवी संगठनों के कार्य में बाधा डालने की सरकारी मंशा बिल्कुल साफ है। दिसम्बर 1984 में गैस त्रासदी के बाद से ही भोपाल जहरीली गैस काण्ड संघर्ष मोर्चा व नागरिक राहत व पुनर्वास समिति ने काम करना शुरू कर दिया तथा तीसरे संगठन–ट्रेड यूनियन रिलीफ फण्ड का जुड़ाव इनके साथ विगत अप्रैल माह में हुआ। ये संगठन मात्र राहत, पुनर्वास या सर्वेक्षण का ही काम नहीं कर रहे हैं बल्कि गैस पीड़ित स्वयं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहें इसके लिए भी प्रयासरत हैं। इसके अलावा यूनियन कार्बाइड कर्मचारी संघ जो राहत कार्य में सक्रिय था, अब कम्पनी के बन्द होने पर उपरोक्त तीन संगठनों के साथ मिलकर कर्मचारियों के वैकल्पिक रोजगार के संघर्ष में जुटा है। वी.एच.ए.आई. भी गैस पीड़ितों के बीच सक्रिय है।

सरकार की उदासीनता व दोषी को सजा देने की इच्छा–शक्ति का अभाव इन संगठनों को आन्दोलन का रूख अख्तियार करने पर मजबूर कर रहा है। वे तथ्यों की सूचना प्राप्त करने के लिए लोगों के बीच अपने सम्पर्क के आधार पर वैकल्पिक रास्ता बना रहे हैं, जो भोपाल गैस त्रासदी के संदर्भ में फैलाये गये सभी मिथकों व असत्य जानकारियों के भण्डाफोड़ करने व सत्य को जनता के समक्ष पेश करने की कोशिश कर रहे हैं। भोपाल में सरकार इसे एक राजनैतिक चेतावनी के रूप में देख रही है। 24 व 25 जुलाई का दमन इस मनोदशा का एक उदाहरण है।

शब्द संख्या – 509

III

सरकारी ढांचे की भूमिका

भोपाल गैस पीड़ितों के लगातार कष्ट को समझने के प्रयास से नेपथ्य में चलने वाली प्रक्रिया का कुछ आभास मिलता है।

सरकार व यूनियन कार्बाइड–न केवल पिछले 8 माह से बल्कि पिछले 5 वर्षों से मध्य प्रदेश व भारत सरकार एवं यूनिन कार्बाइड की 'अपराध–पूर्ण' मिली भगत मौजूदा स्थिति के लिए जिम्मेवार है। अमेरिका के कानूनी मुकदमों में दिखाये जा रहे मतभेद के बावजूद यह साफ हो रहा है कि ये रिश्ते झगड़े वाले कम और सहयोग वाले ज्यादा हैं। मिक गैस के बारे में जनता के बीच फैलाये जाने वाले भ्रम में दोनों की समान भागीदारी से भी इस धारणा को बल मिलता है। भोपाल में स्वास्थ्य निदेशक डा. नागू के रिश्तेदार नागू यूनियन कार्बाइड के सुरक्षा व्यवस्था के जिम्मेवार अफसर हैं। श्री नागू रेडक्रास सोसायटी की स्थानीय इकाई के अध्यक्ष भी हैं। यह बात इसलिए ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि वारेन एण्डरसन अमरीकी रेडक्रास सोसायटी के बोर्ड के सदस्य हैं। रेडक्रास ने गैस पीड़ितों के इलाज के लिए भोपाल में तीन स्वास्थ्य केन्द्र खोले हैं। मोर्चा कार्यकर्त्ताओं का आरोप है कि इन स्वास्थ्य केन्द्रों से सारे रिकार्ड यूनियन कार्बाइड को चले जाते हैं। अगर यह सच है तो यह बात काफी चिन्ताजनक है।

कार्बाइड इससे निकलने वाले निष्कर्षों का काफी दुरुप्योग कर सकता है क्योंकि यूनियन कार्बाइड रासायनिक युद्ध के लिए रसायन बेचने वाली विश्व की सबसे बड़ी अमरीकी कम्पनी भी है। यह आरोप भी लगाया जा रहा है कि हिरोशिमा के पीड़ितों की तरह गैस पीड़ितों को प्रायोगिक जानवर समझा जा रहा है।

सोडियम थायासल्फेट विवाद–सोडियम थायोसल्फेट पर लगातार वाद–विवाद भी त्रासदी के प्रति सरकारी मंशा का एक ठोस उदाहरण है। गैस पीड़ितों पर सोडियम थायोसल्फेट के इन्जेक्शनों का प्रयोग करने पर कई स्वतंत्र डाकटरों को सकारात्मक परिणाम मिले। इसी के अनुरूप 14 फरवरी 1985 को भारतीय स्वास्थ्य शोध संस्थान (आई.सी.एम.आर.) ने सोडियम थायोसल्फेट के प्रयोग के लिये औपचारिक अनुशंसा की। अब सरकार खुद सोडियम थायोसल्फेट कम दे रही है और स्वयंसेवी संगठनों के द्वारा इन्जेक्शन दिये जाने पर भी रोक लगा दी गई है। स्वास्थ्य निदेशक डा. नागू ने भी सोडियम थायोसल्फेट को रोकने के लिए नियमावली बना दी। बाद में लगातार दबाव के बाद सरकार ने कुछ 'जन स्वास्थ्य केन्द्रों' को कुछ इन्जेक्शन दिये थे। मगर 25 जून की घटना के बाद फिर से 7 जुलाई को पुर्नस्थापित जन स्वास्थ्य केन्द्र को इसकी आपूर्ति देने से मना कर दिया गया। इस रोक के लिए कोई ठोस कारण नहीं बताया गया है। 16 जुलाई को जब डा. निशित बोहरा राहत कमिश्नर ईश्वर दास से मिले तो उन्होंने कहा कि इन जन स्वास्थ्य केन्द्रों का स्तर ठीक न होने के कारण यह इन्जेक्शन नहीं दिया जा रहा है। उन्होंने इस आरोप का समुचित आधार बताने से इन्कार कर दिया। जब डा. बोहरा ने जे.पी. अस्पताल के उप मुख्य चिकित्सा अधिकारी डा. श्रीवास्तव से मुलाकात की तो डा. श्रीवास्तव ने स्वास्थ्य केन्द्र के स्थायित्व की जांच करके अपनी रपट में उस केन्द्र के दीवारों के ठीक से न रंगे होने व काफी लम्बी–चौड़ी जगह के अभाव की शिकायत का जिक्र किया। उसने डा. वोहरा को इस रपट की एक प्रतिलिपि देने और इस स्वास्थ्य केन्द्र की इन कर्मियों को दूर करने के बाद सोडियम थायोसल्फेट के इन्जैशनों की आपूर्ति देने से भी इन्कार कर दिया। अब डा. वोहरा ने डा. ईश्वर दास को एक कानूनी अधिसूचना भेज दी है ताकि सोडियम थायोसल्फेट हासिल किया जा सके। काफी पहले सरकार ने खुद अपनी बस्ती वाले सरकारी स्वास्थ्य केन्द्रों में काफी धीमी गति से यह इन्जेक्शन देने शुरू किये थे। यह प्रक्रिया सभी प्रभावित लोगों को स्वास्थ्य करने में 7 वर्ष तो लेगी क्योंकि एक दिन में मात्र 300 इन्जेक्शन ही दिये जा रहे थे। मगर सूई के लिए मरीजों के चुनने में भी तमाम मनमानी व भ्रष्टाचार था। सबसे ज्यादा संकट इस बात का है कि सोडियम थायोसल्फेट के इन्जेक्शन देने के बाद गैस पीड़ितों के पेशाब की जांच करके थायो सायनेट के स्तर का पता लगाने हेतु भारतीय स्वास्थ्य शोध संस्थान के अनुशंसा को नहीं स्वीकारा गया है। सोडियम थायोसल्फेट शरीर में प्रवाहित सायनाइड को विषहीन बनाने के लिए थायोसलफेट में परिवर्तित कर देता है और जो गैस पीड़ित के पेशाब से बिना किसी हानि के बाहर निकल जाता है।

आखिर ऐसा व्यवहार क्यों ? सभी स्वतंत्र डाक्टरों, वकीलों और कार्यकर्त्ताओं से एक ही सुसंगत जबाव मिला है कि सोडियम थायोसल्फेट के सफल प्रयोग के बाद गैस पीड़ितों के पेशाब में मिलने वाले थायोसायनेट के स्तर से यह बात सिद्ध हो जाएगी कि पीड़ितों के शरीर में सायनाइड है। यह सर्वविदित है कि केनिद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने गैस त्रासदी के बाद वहां के वातावरण में सायनायड के अवशेष पाये थे, मगर यह रपट आम जनता को उपलब्ध नहीं करायी गयी। जर्मनी विषय विशेषज्ञ डा. मैक्स डार्डर ने भी गैस पीड़ितों के खून में सायनायड की उपस्थिति को बताया था। आखिर यह सायनायड कहां से आया? यूनियन कार्बाइड ने अपनी रिपोर्टों में इसकी चर्चा कभी नहीं की। इसका अर्थ यह है कि यूनियन कार्बाइड ने काफी जानकारियाँ छिपाने की कोशिश की है। भोपाल त्रासदी के बाद सायनायड की उपस्थिति अगर सिद्ध हो जाती है तो इससे विश्व स्तर पर कार्बाइड के आर्थिक हितों की हानि होगी, इसलिए वह इसे जहां तक हो सके टालने की कोशिश कर रहा है। भारत सरकार द्वारा कार्बाइड की मदद किये जाने के पीछे कैसा निहित स्वार्थ है, यह कहना कठिन है पर इनके स्पष्ट रिश्ते हैं। इन रिश्तों का शायद एक कारण स्पष्ट दिखाई देता है कि हमीदिया अस्पताल के डा. एन.पी. मिश्रा को यूनियन कार्बाइड चिकित्सा सलाहकार के बतौर पर्याप्त शोध अनुदान देती है। डा. मिश्रा गैस पीड़ितों को सोडियम थायोसल्फेट दिये जाने के विरोधी हैं।

'विशेषज्ञों' की भूमिका – भोपाल गैस त्रासदी के प्रति भारत के स्वास्थ्य, वैज्ञानिक और कानूनी प्रतिष्ठानों की प्रतिक्रिया निराशाजनक है। डाक्टरों, वकीलों और वैज्ञानिकों से अपनी 'पेशे' की गरिमा, नैतिकता और स्वधर्म के पालन की अपेक्षा किसी भी समाज की न्यूनतम स्वाभाविक अपेक्षा है। पर दुख की बात है कि कुछ अपवादों को छोड़कर किसी में ऐसी सत्यनिष्ठाा नहीं देखी गई। वैज्ञानिक समुदाय या तो चुप बैठा है या सीधे मिथ्या वर्णन, झूठे प्रचार व आपराधिक गोपनीयता में संलग्न है। इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान परिषद के महानिदेशक डा. वरदराजन की भूमिका काफी उल्लेखनीय है। डाक्टरी समुदाय का व्यवहार भी इससे अच्छा नहीं रहा है। सोडियम थायोसल्फेट का लगातार समर्थन करने वाले एक महत्वपूर्ण डाक्टर ने अपनी

कड़वाहट प्रकट करते हुए कहा कि चिकित्सा का नैतिक मानदंड अब मात्र स्विटजरलैंड का फ्रैंक और अमरीकी डालर है। स्थानीय डाक्टरों में से बहुत कम डाक्टरों ने गैस पीड़ितों की मदद की होगी। कई गैस पीड़ितों से सोडियम थायोसल्फेट की सुई के लिए 50–50 रुपये ले रहे थे जबकि इसका मूल्य मात्र 12 पैसे हैं। 13 दिसम्बर 1984 को हमीदिया अस्पताल के अधीक्षक डा. भण्डारी का नागरिक राहत व पुनर्वास समिति के कार्यकर्त्ताओं के समक्ष यह बयान कि मिक गैस का कोई दीर्घकालिक असर नहीं होता है व्यवस्था चला रहे विशेषज्ञों की 'जनहित संरक्षक' की दृष्टि का छोटा सा उदाहरण है। मेडिको फ्रैन्ड्स सर्किल, वालेन्टरी हेल्थ एसोसिएशन आफ इण्डिया जैसे समूहों के अलावा मोर्चा, पुनर्वास समिति तथा टी.यू.आर.एफ. ने भारतीय समाज के संवेदनशीलता के पक्ष को मजबूती से रखा। अभी कुछ दिन पहले भोपाल के कुछ संभ्रान्त नागरिकों का एक प्रतिनिधि मण्डल म.प्र. के मुख्यमंत्री से मिला है, जिसने सोडियम थायोसल्फेट की सुई देने, कार्यकर्त्ताओं पर से फर्जी मुकदमे वापस लेने तथा पुलिस दमन खत्म करने की अपील की है। प्रतिनिधि मण्डल में म.प्र. के पूर्व सचिव एम.एन. बुच, जबलपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रभुदयाल अग्निहोत्री के अलावा कई महत्त्वपूर्ण पत्रकार, लेखक व विधायक भी शामिल थे।

कानूनी तबकों की निराशा भरी प्रतिक्रिया को भी जान लेना जरूरी है। भोपाल में सक्रिय कार्यकर्त्ताओं को कानूनी मदद करने के लिए मात्र 2 वकील सामने आये। इनमें से एक राकेश श्रोती ने हमें विस्तार से बताया कि किस तरह वकीलों को कम्पनियों और अपराधियों द्वारा खरीदा गया था या तंग किया जा रहा है। राष्ट्रीय कानूनी समुदाय का असफल होना सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत के अन्दर भोपाल को एक कानूनी मुद्दा नहीं बनाया जा सका जैसा कि लायर्स कलकटीव (बम्बई) की इन्दिरा जयसिंह का मानना है कि क्या हमलोग भारत में मुकदमा दायर नहीं कर रहे हैं? यूनियन कार्बाइड के यहाँ 13 कारखाने हैं। क्यों नहीं हम लोग यहां उसे रुपया उगलने के लिए मजबूर करते हैं ? भारत सरकार को मुकदमा दायरा करने के लिए अमरीका क्यों जाना पड़ा ? हम लोग अमरीकी वकीलों को 'अस्पताल या लाश गाड़ी का पीछा करने वाले' कहकर उनकी निन्दा करते हैं, मगर भारतीय वकीलों ने इसके लिये क्या किया है ? हमारी कानूनी प्रक्रिया को अपर्याप्त माना जाता है तो भोपाल के मुद्दे को उत्प्रेरक आधार बनाकर, क्या इस प्रक्रिया को सुधारा नहीं जा सकता है ? इन्दिरा जय सिंह व आनन्द ग्रोवर ने बताया कि दिल्ली साइंस फोरम को छोड़कर किसी ने भोपाल के जांच कमीशन को महत्वपूर्ण नहीं माना। न्यायाधीश एन.के. सिंह के नेतृत्व में बने जांच आयोग को इस त्रासदी के पीछे के कारणों का पता लगाने के लिए बनाया है। इन वकीलों का मानना है कि जनता की भागीदारी के बल पर कारणों व जिम्मेदारियों के संदर्भ में तथ्य इकट्ठे करके दीर्घकालिक परिणामों के बारे में भी जाना जा सकता है। पर सभी का ध्यान अमरीकी कोर्ट पर अटका हुआ है। भारत सरकार के साथ–साथ यूनियन कार्बाइड भी कमीशन के काम में विलम्ब करने की कोशिश कर रही है। न्यायाधीश एन.के. सिंह के बयानों से यह सिद्ध हो गया है, क्योंकि उन्होंने बार–बार शिकायत की कि सरकार उन्हें आवश्यक सामान्य तकनीकी सहायता देने में आनाकानी कर रही है।

ऐसा लगता है कि भारतीय व विदेशी औद्योगिक लॉबी सच्चाई छिपाने के लिए सरकार पर दबाव डाल रही है। क्योंकि अगर इस घटना के असली कारणों व अपराधियों को जनता जान जायेगी तो भोपाल त्रासदी का असर भारत में कार्यरत अन्य घतक उत्पादन इकाइयों पर भी पड़ेगा। सरकार ने एक कानून द्वारा स्वायत्त कानूनी इकाइयों और व्यक्तियों को गैस पीड़ितों के मुआवजे के लिए लड़ने पर रोक लगा दी है। कुछ वकीलों का सोचना है कि यह संविधन की धाराओं का उल्लंघन है अतः इसे चुनौती दी जा सकती है।

अन्ततः प्रचार माध्यमों की भूमिका ऐसी रही है कि गैस त्रासदी के तुरन्त बाद प्रचार माध्यमों में उसके प्रचार की बाढ़ सी आ गई थी। हाल ही में हुए दमन का केवल कुछ ही राष्ट्रीय पत्रों में जोर–शोर से जिक्र हुआ, मगर किसी भी बड़ी पत्रिका ने इस घटनाक्रम के गहरे कारणों को उजागर करने का प्रयास नहीं किया। यह ऐसा ही है कि एक बार किसी घटना का क्रम पूरा हुआ कि उसके बाद के परिणामों से सम्बन्धित समस्याओं का कोई ध्यान नहीं रखता। कुछ अखबारों ने एक तरफ गैस पीड़ितों के आन्दोलन से सम्बन्धित विचार–खबरों को तोड़ा–मरोड़ा और दूसरी तरफ इन्होंने सरकारी पक्ष को स्वामी भक्ति के साथ प्रचारित किया। साथ ही कार्यकर्त्ताओं के खिलाफ खुलकर प्रचार किया है। 25 जून के प्रदर्शन में ऐसा ही अजीबो–गरीब उदाहरण सामने आया। लाठी चार्ज के बाद जब मोर्चे के कार्यकर्त्ता आलोक प्रताप सिंह डी.आई.जी. पुलिस से बात कर रहे थे तो उप–जिलाधीश ने आगे आकर लाल से रंग की एक बोतल दिखाई और कहा कि यह तेजाब की बोतल एक प्रदर्शनकारी लेकर आया थ। आलोक ने जैसे ही उन्हें चुनौती दी तो यह पाया गया कि बोतल में खाँसी की दवा थी। अगले दिन फिर भी किसी स्थानीय पत्र ने ये गलत खबर दे ही दी कि प्रदर्शनकारी अपने साथ तेजाब लाये थे।

इस रपट में भोपाल त्रासदी से विज्ञान, प्रौद्योगिकी और विकास सम्बन्धी दीर्घकालिक मुद्दों के बारे विशेष कुछ नहीं कहा गया है। समिति एवं कुछ अन्य स्वयं सेवीसंस्थाएँ और शोधकर्त्ता इन मुद्दों के गहन अध्ययन की योजना बना रहे

हैं। मेडिको फ्रैन्ड्स सर्किल ने गैस पीड़ितों की स्वास्थ्य सम्बन्धी स्थिति एवं इससे सम्बन्धित मुद्दों पर उल्लेखनीय रपट तैयार की है।

लोकायन स्वतंत्र कार्यकर्त्ता समूहों के लिए उपयोगी इस सामग्री को समय–समय पर प्रकाशित करने का प्रयास करेगा।

शब्द – 1935